विषयानुक्रम ।

—:-*-:—

PRINTED BY K. C. BANERJEE AT THE ANGLO-ORIENTAL PRESS,
LUCKNOW.

and

Published by Swami N. S. Swayam Jyoti,
Secretary,
The Rama Tirtha Publication League ; Lucknow.
1919.

अमृत की कुंजी अर्थात् ज्ञान कहानी ।

(हिन्दी)

मूल्य मात्रः—एक आना

डाक व्यय आध आना ।

इस छोटी सी किन्तु उपदेश से भरी हुई पुस्तक में काम क्रोधादि पांचो शत्रु के वश होकर मनुष्य पापाचरण करता है, उससे बचने के सरल उपाय और विवेकादि सद्गुणों के अनुशीलन से धार्मिक जीवन रूपी अमृत फल पाने के सुगम साधनों का अत्यन्त सरल वर्णन है ।

—:※:—

शान्ति प्रकाश ।

(हिन्दी)

मूल्य ॥)   डाक व्यय तथा वी. पी. ।)

इस पुस्तकका विषयानुक्रम पढ़ने से ही पाठक को इसकी उपयोगिता का बोध हो जायगा ।

संक्षिप्त विषयानुक्रमः—(१) प्रथम कला में धर्मशिक्षा चार आश्रमों का अभिप्राय, शुद्धि और साधन अवस्था, शारीरिक, मानसिक, गृहस्थ और सामाजिक धर्म तथा शान्ति अवस्था का निरुपण किया है । (२) द्वितीय कला में प्रार्थना, स्वामी रामतीर्थ जी का जीवन आदर्श, ग्रन्थ कर्त्ता का आत्मानुभव, तथा संक्षेप शिक्षायें व प्रार्थनाओं, का समावेश है । (३ तृतीयकला में ग्रन्थ कर्त्ता के एक अज्ञान बालक के द्वारा सद्गुरु रामभगवान् के उपदेश का अलौकिक वर्णन है । (४) चतुर्थ कला में साधारण धर्म नियमावली, और ग्रन्थ कर्त्ता की विशेष भेंट से पुस्तक को सुभूषित कर रखी है ।

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग,

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ ।

निवेदन ।

हमारे स्थायी ग्राहकों की सेवा में ग्रन्थावली के इस भाग के भेजने पर १००० पृष्ठ के आठ खण्डों में से (जिनको एक ही वर्ष में पहुंचाने की हमने प्रतिज्ञा की थी) पाँचवां खण्ड समाप्त होता है। छठा भाग भी इसी पांचवे भाग के साथ ग्राहकों की सेवा में उपस्थित करने का विचार था, परन्तु कई बाधाओं के कारण यह विचार पूरा नहीं हो सका। यद्यपि वह मुद्रित हो रहा है और आशा की जाती है कि दीवाली के लगभग ही सब को पहुंचाया जायगा।

सातवे और आठवे खण्डों को एक ही पुस्तक के आकार में निकालने का विचार है। उसमें श्री स्वामी रामतीर्थ जी की अमृतरूपी वर्षा अर्थात् उनके आत्मज्ञान और आनन्दोत्साह से भरे हुए भजनों तथा कविताओं जो प्रथम "रामवर्षा" नामक पुस्तक में छप चुके थे, प्रकाशित होंगे। किसी राम भक्त को ऐसे अमूल्य, अपूर्व, और अनूठे ग्रन्थ से वंचित रहना उचित नहीं। आत्मज्ञान के साधन का यह पुस्तक अपने ढंग का अद्वितीय है।

हमें यह सखेद कहना पड़ता है कि यथाशक्ति परिश्रम और प्रयत्न करने पर भी प्रेस की विवशता और अन्य कठिनाइयों के कारण आठों खण्डों का दीवाली तक में प्रकाशित करना नितान्त असंभव प्रतीत होता है। किन्तु सुज्ञ ग्राहकगण इससे कदापि यह संदेह न करें कि वर्ष भर के मूल्य में उनको केवल ५ ही खण्ड देकर, आगामी वर्ष में फिर वार्षिक मूल्य

उनसे वसूल किया जायगा। नहीं, ऐसा नहीं है। उनके भेजे हुए वार्षिक मूल्य में १०००, पृष्ठ के साहित्य पर उनका पूरा अधिकार है। जब तक उनकी सेवा में इस वर्ष के आठों खण्ड नहीं पहुँच जायँगे द्वितीय वर्ष का मूल्य कदापि नहीं माँगा जायगा। पुराने ग्राहकों को तो घाटा उठा कर भी हम अपने कथनानुसार इस वर्ष के आठों खण्ड उसी मूल्य पर देंगे, किन्तु तीसरे और चौथे भाग के निवेदन में लिखित कारणों के अनुसार नवीन ग्राहकों के लिये ग्रन्थावली का वार्षिक मूल्य हमें विवश हो कर बढ़ाना पड़ा है।

अतएव भविष्य के ग्राहकों के लिये ग्रन्थावली का वार्षिक मूल्य डाक व्यय के साथ सादी ३॥) और सजिल्द का ५) होगा। ग्राहकों से प्रार्थना है कि विशेष सूचनाओं के लिये इसी पुस्तक में अन्य स्थान पर छपे हुए स्थायी ग्राहक होने के नियम पढ़ लें। हम आशा करते हैं कि हमारी कठिनाइयों का विचार करके ग्राहकगण इसका स्वीकार करेंगे और ऐसे अमूल्य उपदेशों के प्रचार कार्य में हमें सहयोग देंगे।

१२—१०—२० }
लखनऊ }

मंत्री।

श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली
के
स्थायी ग्राहक होने के नियम ।

(१) उद्देशः— ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के उपदेशों और उनके उपदेशों के समर्थक अन्य हिन्दी साहित्य का यथासाध्य सस्ते मूल्य पर प्रचार करना ।

(२) पुस्तकः—एक वर्ष में, २०"×३०" (डबल क्राउन) १६ पेजी आकार के १००० पृष्ठ विषयविभाग और लेख-बंध की अनुकूलता के अनुसार पृथक् २ पुस्तकों में विभक्त करके दिये जायंगे ।

(३) मूल्यः—इस ग्रन्थावली का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित सादी ३॥) और सजिल्द ५) रहेगा ।

(४) वर्षः—कार्तिक से आश्विन तक का एक वर्ष माना जायगा जिसमें वर्षारम्भ में ही प्रथम पुस्तक वी. पी. द्वारा भेज कर वार्षिक मूल्य वसूल किया जायगा अथवा ग्राहक को म. ऑ. द्वारा भेजना होगा ।

(५) वर्ष के मध्य या अन्त में मूल्य देने वालों को भी उसी वर्ष की सब पुस्तकें दी जायंगी । अन्य किसी मास से १२ मास का वर्ष नहीं हो सकता अर्थात् किसी ग्राहक को थोड़ी एक वर्ष की और थोड़ी दूसरे वर्ष की पुस्तकें वार्षिक मूल्य के हिसाब से नहीं दी जातीं ।

(६) किसी एक पुस्तक के ग्राहक को स्थायी ग्राहक होते समय उस पुस्तक की कीमत वार्षिक मूल्य में मुजरा नहीं की जाती, अर्थात् वार्षिक मूल्य की पूरी रक़म एक साथ पेशगी जमा करने पर ही वह ग्राहक स्थायी हो सकेगा ।

(७) पत्र व्यवहार में उत्तर के लिये टिकट या कार्ड भेजे विना उत्तर नहीं दिया जाता । पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक कृपया अपना पता पूरा और साफ़ २ लिखें ।

रामपरिचय ।*

(१)

["तीन आधुनिक भारतीय सुधारक।" लेखक, रायबहादुर लाला बैजनाथ बी. ए.]

तीसरे महापुरुष, जिनसे मेरा घनिष्ट परिचय था और जिनके साथ मैंने काम किया था, पंजाब के स्वामी रामतीर्थ एम. ए. थे। ये उन उत्तम और उत्कृष्ट आत्माओं में से थे, जो आत्मा की उच्चतम आकांक्षाओं की प्राप्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिये कभी २ मानवजाति के मध्य में आया करती हैं। पंजाब के गुजरानवाला जिले के एक कट्टर ब्राह्मण वंश में इनका जन्म हुआ था। कुछ नहीं से प्रारम्भ कर स्वामी जी ने २०—२१ वर्ष की ही अवस्था में पंजाब विश्वविद्यालय में, जिसका एम. ए. उन्होंने गणित में पास किया था, प्रसिद्धि प्राप्त की। इसके बाद वे लाहोर के फ़ॉरमैन क्रिश्चियन कालेज के अध्यापक बनाये गये। परन्तु उपनिषदों के महान सिद्धान्त—वह तू है (तत्त्वमसि)—की सत्यता का अनुभव करने के लिये उन्होंने शीघ्र ही यह पद और कुटुम्बियों तथा मित्रों से सब सम्बन्ध परित्याग कर दिया। बगल में उपनिषद् की एक पोथी दबी हुई है, साथी हैं जंगल के पशु और पक्षी तथा पहाड़ी गङ्गा का स्वच्छ जल, गर्मी और सर्दी और वन की सब मुसीबतों को झेलता हुआ, जीवन की समस्याओं पर गम्भीर विचार में रत लगातार वर्षों तक यह नवयुवक भटकता रहा, कभी कैलाश शिखर

*अंग्रेजी से अनुवादित।

पर चढ़ता है, तो कभी काश्मीर में अमरनाथ की यात्रा कर रहा है, आज यमुना के मूलस्थान यमुनोत्तरी के दर्शन करने गया है तो कल वह गङ्गा के मूल स्रोत गंगोत्तरी जायगा, अब नदी के तट पर विचार में बराबर दिन पर दिन बिता रहा है। इतने पर भी जब वह अपने अनुसन्धान की वस्तु को न प्राप्त कर सका तो संसार का अस्तित्व बिसर जाने के साथ ही उसे अपने शरीर की भी सुध न रही कि वह बह कर किस चट्टान से जाकर टकरायगा। अन्त को २६ वर्ष की अवस्था में उस वस्तु की प्राप्ति हुई, जिसे वह ढूंढ़ रहा था। भारत की सेवा में अपने को लगाने को अब वह उतर कर जन-समाज में आता है, और सब सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों के हज़ारों मनुष्यों को उपदेश देता है। केवल अपनी उत्सुकता और मनोहर व्यक्तित्व के बल से वह उनको अपना अनुयायी बना लेता है। शारीरिक आराम-चैन से बेपरवाह, जो कुछ उसे मिल जाता है भोजन कर लेता है और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के सिवाय कोई भी चीज़ वह अपने साथ नहीं रखता। रुपया-पैसा या वस्त्र अथवा दूसरी चीज़ें ज्योंही उसे भेंट की जाती हैं, वह दूसरों को दे देता है। इस संन्यासी द्वारा प्रेमी भक्तों के दिये हुए स्वादिष्ट भोजन इस बिना पर त्याग दिये जाते हैं कि जो लोग सत्य का जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखते हैं उनके प्रारब्ध में उच्च विचार और सादी रहन ही है। न अपनी श्रेष्ठता का निरूपण है, न दर्पपूर्ण व्यवहार। बड़प्पन का तो चेत ही नहीं है। जिस किसी का स्वामी का संसर्ग हो जाता है उसी को उनकी मुसकियां मोहित कर लेती हैं, और उसे उस समय जान पड़ने लगता है कि, मानो उसके सब संकट और खेद दूर होगये। अध्ययन का अनुराग इतना

अधिक था कि थोड़े ही समय में पाश्चात्य धार्मिक और तात्त्विक पुस्तकों का पूरा पुस्तकालय ही पढ़ डाला गया। उपनिषद् के ऋषि, व्यास, कृष्ण, शङ्कर, बुद्ध के वाक्य उतनाही उनकी जिह्वा के अग्र भाग पर थे जितना कि शम्श तब्रेज़ और मौलाना रूम के। कांट, शोपेनहॉर, फिचटे और हिगेल उतने ही परिचित थे जितने कवीर और नानक। परन्तु उर्दू काव्य स्वामी जीका विशेष विषय था और लक्षणों से प्रतीत होता है कि उनके पद्य भारतीयों में वेदान्त के अन्य अनेक प्रमाणभूत श्लोकों की तरह प्रचलित हो जाँयगें। ई० १६०२ में हम उन्हें जापान होते हुए अमेरिका जाते पाते हैं। वहां उन्होंने दो वर्ष के काल में अनेक विद्वान और अग्रणी जनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अमेरिका की "ग्रेट पैसिफिक रेलरोड कंपनी" के प्रवन्ध कर्त्ता ने उन्हें "पुल मैन कार" में स्थान देते हुए कहा था, उनकी मुसकियां दुर्निवार हैं। अमेरिका में अपने भक्तों की पूजा और भेंट से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ, वे भारत का हित साधने के लिये प्रयत्न करते रहे। कार्य करना, निरन्तर कार्य करना उनका मूल मंत्र था। "हमारे सामने इस समय ठीक तरह की यज्ञ, त्याग, दीनों की रक्षा और सेवा करने की समस्या है। और यह यज्ञ इस प्रकार की जानी चाहिये कि, कार्य, अपने उद्देश के लिये ही हानिकर न सिद्ध हो। प्रत्येक भारतवासी को पद, धन, विद्या या शक्ति में अपने से सब छोटों को अपने ही बच्चों की तरह सहायता करनी चाहिये। और बिना किसी पुरस्कार की इच्छा के आत्मा के भोजन, उत्साहदान, विद्या और प्रेम से उनकी सेवा करने के अधिकार का उपयोग, जो माता का परमानन्द है, करना चाहिये। यही वास्तविक निष्काम यज्ञ है"। जैसा कि उन्होंने अपने

विशेष ढंग से कहा था, "दूसरों के सुधारकों की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आत्मसुधारकों की, जिन्होंने विश्वविद्यालय की उपाधियां नहीं प्राप्त की हैं, परन्तु स्वयं पर विजय पाई है। अवस्था—दैवी आनन्द की जवानी। वेतन—ईश्वरत्व। भिक्षात्मक प्रार्थनाओं के साथ नहीं, परन्तु आदेशात्मक निर्णयपूर्वक विश्व के संचालक को-तुम्हारे अपने आप को-तुरन्त सूचित करो"। पश्चिम में दो वर्ष रहकर स्वामी जी भारत लौटे। परन्तु इतने ही समय में वहां की असली जिन्दगी का जो ज्ञान उन्हों ने प्राप्त किया वह किसी दूसरे मनुष्य को बीस वर्ष में भी नहीं हो सकता था। इस ज्ञान को उन्होंने उदारतापूर्वक अपने देशवासियों के चरणों में अपने लेखों और व्याख्यानों में रक्खा। और उनके समस्त लेख और व्याख्यान पूर्व के अगाध पण्डित और पश्चिम के असली व्यवसायी के छाप से अङ्कित होते थे। भारत के लिये हल करने को समस्या है, "व्यावहारिक बुद्धि की गरीबी और आबादी की अधिकता। शारीरिक श्रम से घृणा, जात पांत के अस्वाभाविक विभाग, विदेशी यात्रा का विरोध, बाल विवाह और नारियों को व्यापक शारीरिक और बौद्धिक अंधकार में रहने को विवश करना आदि सभी को व्यावहारिक बुद्धि का यह अभाव घेरे हुए है। पूर्व पुरुषों से दाय बिना मिले हमारा काम नहीं चल सकता। जो समाज इसे त्याग करता है वह अवश्य बाहर से नष्ट हो जायगा। साथ ही यह अंश बहुत अधिक होने से भी काम नहीं चलता। जिस समाज में इसका प्राबल्य है वह भीतर से नष्ट हो जायगा। छोटे विचारों के बड़े आदमियों से देश बलवान नहीं होता परन्तु बड़े विचारों के छोटे आदमियों के अस्तित्व से देश बलिष्ट होता है। एक औसत भारतीय घर समग्र राष्ट्र की अवस्था का आदर्श है।

केवल अल्प शक्ति और खानेवालों की हर वर्ष बढ़ती ही नहीं है, परन्तु निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में अनुचित खर्च करने की गुलामी भी है। यदि आबादी की समस्या बिना हल किये छोड़ दी गई तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मैत्री की सब चर्चा निष्फल होगी। विदेश यात्रा से जाति या धर्म जाने का विचार दूर होना ही औषध है। यह धारणा त्यागी जानी चाहिये कि, बच्चों के होने पर ही स्वर्ग में तुम्हारा प्रवेश निर्भर करता है। विवाह को पूर्ववत मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिये। देश में अयोग्य, असमर्थ, असार, परान्न-भोजियों की वृद्धि करने के लिये विवाह मत करो। संगीन की नोक पर तुम्हें शुद्धता प्राप्त करना चाहिये। बिना शुद्धता के न वीरता है, न एकता, और न शान्ति। शिक्षा के क्षेत्र में, प्रधान कर्त्तव्य हमारे सामने गरीबों और नारियों को शिक्षा देना, कृषि विद्या प्राप्त करना, अधिक उन्नत देशों में कला-कौशल सिखना और उस उपयोगी विद्या को भारत में खूब फैलाना है। यदि विश्वास की लौ और प्रज्वलित ज्ञान की मशाल तुम्हारे हृदय में सजीव नहीं है तो तुम एक कदम भी नहीं बढ़ सकते। प्रकृति के मौखिक समतल की अपेक्षा अधिक गहरे समतल पर रहना, अस्तित्व की गहराइयों को ध्वनित करना, तुम में जो आन्तरिक वास्तविकता है, जो प्रकृति में भी आन्तरिक वास्तविकता है, उसे अनुभव और प्राप्त करना, 'तत्त्वमसि' की जीती जागती मूर्ति होना, यही जीवन है, यही अमरता है"। किसी धर्मोपदेशक ने, किसी समाज सुधारक ने समस्या और उसको हल करने की विधि को महान् स्वामी जी की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से नहीं वर्णन किया है। खेद इसी बात का है कि, भारत में उनके कथनों की सत्यता का अनुभव करनेवाले बहुत थोड़े लोग

हैं। थोड़े समय तक देश में काम करने के बाद वे ध्यान और अपने साधारण अध्ययन के लिये हिमालय को लौट गये और ३३ वर्ष की अवस्था में टिहरी के नगीच स्नान करते समय गङ्गा में डूब कर यह शरीर त्याग दिया।

उनके उपदेश का सार पूर्व की दार्शनिक बुद्धिमत्ता का जापान और अमेरिका की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से मिलाना था. "न तो आत्म-अपकर्ष, न जानबूझ कर अधिक समय में आत्म-दमन, न संसार से बिलकुल वैराग्य, न संयमशून्य और विवेकरहित वंशवृद्धि, न अज्ञानता और दासता में तृप्ति, न भूतकाल की विचारहीन और निर्बलकारी उपासना और वर्तमान तथा भविष्य की उपेक्षा, परन्तु पुराने भारी वस्त्रों का त्याग और अन्धा विश्वास का दूरीकरण"-यही महान ऋषि का संदेश है। उनके प्रभाव का उन्हीं के साथ अन्त नहीं होगया। हर साल वह धीरे२ और तत्परता से केवल हमारे नवयुवकों में ही नहीं प्रवेश करता जाता है, परन्तु साधुओं में भी, जो पहले उनकी उपेक्षा करते और उन्हें घृणा-दृष्टि से देखते थे।

("भारत में नवजीवन", लेखक, मि. सी. एफ. एंड्रूज एम. ए.)

दूसरे व्यक्ति ने, जो अनेक प्रकार से स्वामी विवेकानन्द की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक था, उसी वेदान्त के आन्दोलन को उत्तर में अग्रसर किया। स्वामी रामतीर्थ ब्राह्मण थे। वे लाहोर में, जहां फौरमैन क्रिश्चियन कालेज में उन्होंने शिक्षा पाई और विश्वविद्यालय के उज्ज्वल चरित के बाद गणित के अध्यापक (प्रोफेसर) हुए, बड़ी गरीबी में पले थे। परन्तु उनका हृदय पूरी तरह से धर्म के रंग में रंगा था और महाविद्यालय का कार्य छोड़ कर वे परिव्राजक संन्यासी तथा धर्मोपदेशक हो गये। हिमालय के विकट वनों में घुस कर उन्हों ने प्रकृति माता के साथ एकान्तवास किया। उन के चरित्र में वास्तविक काव्य-वृत्ति थी और उनकी तैरती हुई खुशमिज़ाजी घोर मुसीबतों और संकटों में भी उनका साथ देती थी। उनके शिष्य स्वामी नारायण ने मुझसे उन के सार्वजनिक लेखों का उपक्रम लिखने को कहा था। मैंने बड़े ही चाव से यह अंगीकार किया था, क्योंकि विवेकानंद की कृतियों की अपेक्षा इनमें ईसाइयत का स्वर बहुत प्रबल है। दृष्टान्त के लिये प्रभु की प्रार्थना पर नीचे लिखी व्याख्या से विवेकानन्द की भद्दी भूल की तुलना कीजिये, जो उन्होंने "जो स्वर्ग में है (which art in heaven)" वाक्य के सम्बन्ध में की है, जिसे मैं उद्धृत कर चुका हूं।

स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं, "प्रभु की प्रार्थना में हम कहते हैं, 'आज हमें हमारी नित्य की रोटी दे' और दूसरे

स्थान पर हम कहते हैं, ' मनुष्य को केवल रोटी पर ही न जीना चाहिये '। इन कथनों पर फिर विचार करो । इन्हें खूब समझो । प्रभु की प्रार्थना का मतलब यह नहीं है कि, तुम मांगते रहो, इच्छा करते रहो । कदापि नहीं । इस प्रार्थना का अभिप्राय यही है कि, एक सम्राट भी, महाराजाधिराज भी, जिसे नित्य की रोटी न मिलने की ज़रा सी भी आशंका नहीं है, यह प्रार्थना करे । यदि ऐसा है, तो स्पष्ट है कि, 'आज हमें हमारी नित्य की रोटी दीजिये' का अर्थ यह नहीं है कि हम मंगतापन का ढंग ग्रहण करें और लौकिक सम्पत्ति की याचना करें। ऐसा नहीं है । प्रार्थना का अर्थ यही है कि, हरेक, वह चाहे राजकुमार हो या राजा, अथवा साधु, अपने इर्द गिर्द की सब वस्तुओं को, सम्पूर्ण द्रव्यों और प्रचुरता को, अपना नहीं ईश्वर का समझे । ये मेरी नहीं है, मेरी नहीं हैं । इसका अर्थ भिक्षा मांगना नहीं है, परन्तु त्याग है, देना है, प्रत्येक वस्तु का ईश्वरार्पण करना है । सम्राट यह प्रार्थना करते समय अपने को उस अवस्था में लाता है जिसमें अपने कोष के सब रत्न, अपने भवन का सम्पूर्ण ऐश्वर्य, स्वयं भवन तक, वह परित्याग करता है, दे देता है, इन सब वस्तुओं पर से अपना स्वत्व हटा लेता है । यह प्रार्थना करते समय वह साधुओं के भी साधु है । वह कहता है, ' यह ईश्वर का है, यह मेज़, इस मेज़ पर की हरेक चीज़, उसकी है, मेरी नहीं । मैं कोई भी वस्तु नहीं रखता । जो कोई चीज मुझे आकर प्राप्त होती है वह मेरे प्रिय के पास से आती है " ।

स्वामी रामतीर्थ ठीक उन्हीं दिन पंजाब [युक्तप्रदेश-संपादक] की किसी नदी में डूब गये जब उनकी धार्मिक मेधा में सर्वो-

सम फल फलने वाले थे। ऐसे परिव्राजक धार्मिक उपदेशकों के कार्य की यथेष्ट स्तुति नहीं की जा सकती। ये नवीन और प्राचीन के बीच की कड़ी का काम करते हैं। ये लोग, स्वामी दयानन्द की तरह, विशुद्ध संस्कार और मानी हुई धार्मिक बुराइयों के 'नख शिख' विनाश का प्रतिपादन कभी नहीं करते। परन्तु आधुनिक उत्कर्ष से इनका यहां तक यथेष्ट परिचय रहता है कि, ये साफ देख सकते हैं कि हिन्दुत्व में भीतर से सुधार की आवश्यकता है। और ऐसा सुधार करने में ये महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। यूरोप के इतिहास से उदाहरण लेते हुए कह सकते हैं कि कट्टर हिन्दुत्व के भीतर ये प्रति-सुधार का काम करते हैं, और १६ वीं सदी में इगनैटियस लोयोला ने जो भार अपने ऊपर लिया था उससे इनका काम बहुत कुछ मिलता जुलता है"।

श्री स्वामी रामतीर्थ
और
स्वामी नारायण

लखनऊ १६०१
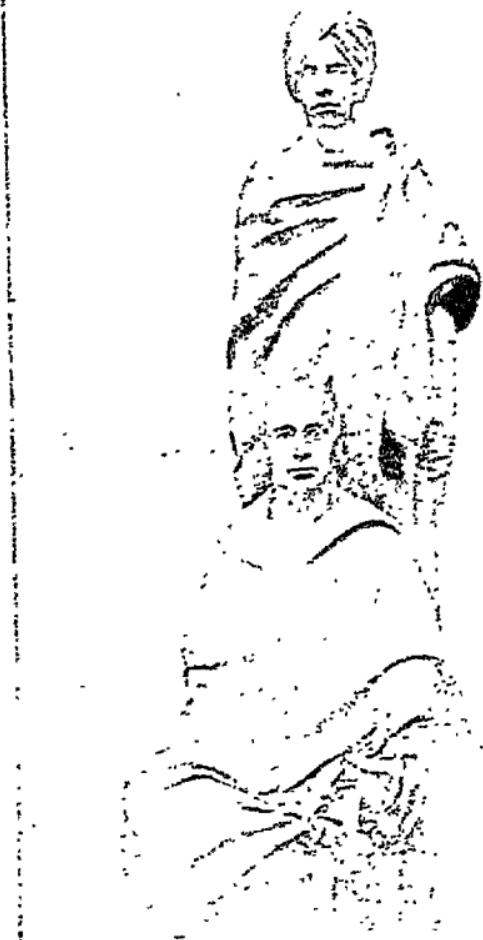
अवतरण।

यह मेरे लिये बड़े संतोष की बात है कि, स्वामी राम के लिये मेरे आदर-भाव की विनय और अपर्याप्त सूचना ने मई १६०८ में मेरे इस ग्रंथ के प्रकाशन का भार उठाने का रूप धारण किया। स्वामी नारायण की सूचना और सलाह पर यह भार उठाया गया था। उनकी संगति और उपदेशों से जो मुझे अपूर्व आध्यात्मिक लाभ हुए हैं उनके लिये मैं उनका आजन्म बहुत ऋणी रहूँगा। केवल उनकी हार्दिक और सच्ची सहकारिता का ही यह फल है कि, यह कार्य संतोषजनक रीति पर अन्ततः एक अंश में पूरा होगया, यद्यपि मैं अनुभव करता हूँ कि अभी बहुत कुछ करना है।

अन्त में स्वामी राम के लेख सुरक्षित होगये और अब वे लुप्त नहीं हो सकते। जननी जन्मभूमि को, अपने इतिहास के इस नाज़ुक समय पर, उनकी बड़ी आवश्यकता है। यह और भी अधिक संतोष और प्रसन्नता की बात है कि अनेक आशातीत स्थानों में भी इस काम की बड़ी सराहना हुई है। कोई प्रायः हरेक पखवारे में मुझे दो पत्र ऐसे मिल जाते हैं, जिनमें बड़ी ही प्रशंसात्मक भाषा में बड़े उत्साह और सचाई के साथ मेरे साहस के लिये मुझे धन्यवाद और बधाई दी जाती है, और जिनमें सत्य तथा चित्त की शान्ति के अन्वेषण में लगी हुई अनेक भूखी और प्यासी आत्माओं के होने वाले आध्यात्मिक कल्याणों का वर्णन किया जाता है। यद्यपि इस अति प्राचीन और पवित्र भूमि में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार हुए एक सदी से अधिक बीत

गई और फलतः लोगों की प्रवृत्ति "जड़वाद" की ओर होगई है, तथापि सौभाग्य से सत्, आनन्द, शान्ति, प्रेम, भक्ति, ज्ञान, बुद्धि, ध्यान, और मुक्ति, रूपी अमूल्य रत्नों, परम कल्याणों तथा वास्तविक गुणों के लिये हमारी प्रिय मातृ-भूमि की उत्कट आकांक्षा अभी लुप्त नहीं होगई है।

मुझे प्रतीत होता है कि, कवि, उपदेशक, तत्त्वज्ञानी और देवतुल्य स्वामी राम उन महापुरुषों में से थे, जो संसार के इतिहास की अत्यन्त भयंकर संधियों के अवसरों पर सह जगत में समय २ पर अवतीर्ण हुआ करते हैं। निस्सन्देह वे भारतवर्ष के एक अति विख्यात और श्रेष्ठ पुत्र थे और ठीक उसी समय आये थे जब उनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। भारत के इतिहास के रंगमंच पर उनका प्रादुर्भाव कोई नवीन सम्प्रदाय या दल (इनकी संख्या तो हम में बहुत है) गढ़ने को, किसी प्राचीन या मृत धर्म या उपासना प्रणाली को नवजीवन देने को, किन्हीं नवीन सिद्धान्तों या तत्त्वज्ञान का प्रचार करने को, कोई नवीन संस्था स्थापित करने को, अथवा नानक की भांति हिन्दू और मुसलमानों को एक करने को यद्यपि निस्सन्देह इस कार्य के लिये क्षेत्र है नहीं हुआ था। परन्तु उनका महान् और उत्कृष्ट कर्त्तव्य सार्वभौम और विश्वव्यापी था। इसाई काल की, इस बीसवीं सदी में, इस वैज्ञानिक युग में, प्रतियोगिता, साम्यवाद, कठिन जीवन संग्राम, व्यवसायीपन, धन के लिये जोशीली दौड़, और समस्त संगिनी बुराइयों के इस ज़माने में, समस्त संसार में, विशेषतः भारत में उच्चतम अविनाशी आध्यात्मिक सत्यों की शिक्षा देना और प्रचार करना उनका महान् उद्देश, उनका महान जीवन-कर्म था।

इस समय क्या ठीक इसी शिक्षा की हमको परमावश्यकता नहीं है? क्या इस क्षण की सबसे बड़ी ज़रूरत आध्यात्मिकता और उच्चतर जीवन का उनका सन्देश नहीं है? क्या उनकी सम्पूर्ण शिक्षा अनियंत्रित स्वार्थपरता का, बाहरीपन और भड़कीले दिखावे का, रूप और बहिर्भाग की पूजा का, धार्मिक दलों और धर्मान्धों की असहिष्णुता और शत्रुता का, विलासिता के अनुराग और उसकी संगिनी बुराइयों का, अपने एशियाई भाइयों को उसी स्वर्गीय पिता के पुत्र हानि पहुँचा कर यूरोपीय राष्ट्रों के नित्य नये उत्थान का, आधुनिक विनाशक अस्त्रों के हृदयहीन व्यवहार और युद्ध की अत्यन्त व्ययसाध्य तैय्यारियों का [आधुनिक सभ्यता के ये कुछ लक्षण अटकलपच्चू लिख दिये गये हैं] प्रबल जोरदार और सजीव प्रतिवाद नहीं है? अस्ताचलगामी सूर्य की भूमि अमेरिका में, उदय होते हुए सूर्य की भूमि जापान में, मातृभूमि भारतवर्ष में उन्होंने सत्य का प्रचार करके सिद्ध किया कि, उनका जीवन-कर्त्तव्य विश्वव्यापी था, उनका संदेश, गरीब और अमीर, बूढ़े और जवान, पढ़े और बेपढ़े, नर और नारी, एशियावासियों और यूरोपियनों, कालों और गोरों, सब के लिये एक सा था। जात पांत, सम्प्रदाय, रंग या जाति के भेदों को वे नहीं पहचानते या मानते थे। और इस प्रकार उन्हों ने बड़े महत्व का उपदेश दिया, जो उनके स्वदेश के लिये और पश्चिम के लिये भी जहां उत्कर्ष और शिष्टाचार की इस उन्नत दशा में भी और ईसाइयत को इतनी शक्ति एवं प्रभाव तथा उदारता की बढ़ती के होते हुए भी इन भेद-भावों को बड़ा गौरव दिया जाता है, खूब गर्भित और गरू परिणामों और फलों से परिपूर्ण था। भारत की भांति किसी एक देश को भले

हो इस समय उनके उपदेशों की दूसरों से अधिक ज़रूरत हो, परन्तु वे थे सारे संसार के लिये। जो अन्य सभों से अपनी एकता, अपनी "अभिन्नता" में पूरा विश्वास रखता था और जिसने इसका अनुभव भी किया था उसके उपदेश दूसरी तरह के हो ही कैसे सकते थे ?

किन्तु केवल महान आध्यात्मिक उपदेशक होने के ही कारण राम की विचित्र व्यक्ति का क़ायल मैं नहीं हूँ। वे "मातृभूमि, भारत" के सच्चे प्रेमी थे। निष्कपट, विशुद्ध और अनुरक्त देशभक्त थे। बड़े २ महात्माओं, ऋषियों और मुनियों, सिद्धों और विद्याधारियों, साधुओं और योगियों, तथा परम शूरों, शासकों और पूजनीय नायकों की जन्मभूमि भारत के वे योग्य और सच्चे सपूत थे। पवित्र आर्यावर्त के तत्पर और सत्यसंध सेवक तथा देशहित के लिये बलि थे। उनकी यही विशेषता मुझ पर अधिक प्रभाव जमाती, बल पूर्वक मर्म-स्पर्श करती है और संस्कार डालती है।

उन्होंने हमारे राष्ट्रीय धर्म की हमें स्पष्ट शिक्षा दी है। उनके कथन हममें उस भारी ज़िम्मेदारी के ज्ञान का सञ्चार करते हैं, जो महान और ऐतिहासिक अतीत के उत्तराधिकारी होने के कारण मातृभूमि के प्रति हमारी है।

यह बात मुझे बड़ी ही विलक्षण जान पड़ी कि, स्वार्थ-शून्य महान स्वामी राम के इस पहलू का, जो "संसार में होता हुआ भी संसार से परे" था उसके चरित्र के इस लक्षण का, उनके सम्बन्ध के किसी भी प्रशंसात्मक लेख में, जो ई० १९०६ में उनकी मुक्ति होने के बाद समाचार पत्रों में तथा अन्यत्र प्रकाशित हुए हैं, उल्लेख या अंगीकार नहीं हुआ है। उनकी देशभक्ति के सम्बन्ध में मैंने अभी जो कुछ

कहा है उसको भली भांति पुष्ट और सत्य सिद्ध करने को (अंगरेजी) तीसरी जिल्द का सातवां भाग काफी है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि, निर्भीकता और साहस की उतनीही मात्रा पाई जाती है जितनी किसी जटिल आधिभौतिक समस्या के विवेचन में। और बिना प्रतिवाद की आशंका के मैं यह भी जोड़ सकता हूं कि, विदेशी राष्ट्रों के सामने पतित मातृभूमि का पक्ष पुष्ट करने में, जैसे कि "भारत की ओर से अमेरिकनों से अपने निवेदन" (अपील) में, अथवा सदियों के ह्रास और पतन के बाद—जैसी विचित्र घटना संसार के किसी अन्य बड़े राष्ट्र को देखना नहीं नसीब हुई है—भारत की अयोग्य और अधम सन्तानों को उन्नति और उत्थान का पथ बताने में साहस और उत्सर्ग का जो भाव उन्होंने सदा प्रगट किया है वह हमारे श्रेष्ठ संन्यासियों में भी विरल ही रहा है। यदि प्यारे राम ने ऐसा न किया होता तो अब वे जो कुछ हमारे लिये हैं सो कदापि न होते। जो चीतों और कालरूप सर्पों के बीच में बिना भय खाये रहता था, बिलकुल निर्जन वन और विकट जंगली पहाड़ जिसे न डरा सके, निश्चित संकट के सामने से भी जिसने अपने पग पीछे नहीं लौटाये, चावल भर फिसलने पर तात्कालिक मृत्यु की सम्भावना भी, जैसी सुमेरु (बंदर पूँछ) की ऊँची चोटियों पर चढ़ने में थी, जिसे भयभीत और लक्ष्यभ्रष्ट न कर सकी, जिसने प्रबल काल को जीत लिया था, जिसके लिये यह जीवन और मृत्यु सचमुच समान थे, क्या वह, क्या ऐसा पुरुष, मैं कहता हूँ, भला किसी भी मानवी शक्ति या मानव से, वह कितना ही ऊँचा, कितना ही बड़ा, या कितना ही बलवान क्यों न होता, डर सकता था ? पूर्ण निर्भीकता और स्वतंत्रता का यही मनोभाव, जीवन और

मृत्यु के सम्बन्ध में यही पूरी उदासीनता, अपने भविष्य के लिये यही निपट बेपरवाही उनके सत्य के, वह सत्य सरकारों या पुरोहित-वर्ग और सभ्यताओं किसी के भी विषय में हो, साहसपूर्ण और निर्भय प्रतिपादन का कारण थी। यही उनके गौरव की, उनकी महत्ता की—महत्ता में वे इस जमाने के किसी भी महापुरुष से कम नहीं थे—कुंजी थी। यही बात उनको उन अनेक उपदेशकों, प्रचारकों, नेताओं और सुधारकों से, जो प्रायः "कम से कम प्रतिरोध के रास्ते से काम" के स्निग्ध सरल वाक्य को अपना मुख्य सिद्धान्त बनाकर कार्यारम्भ करते हैं और जिनकी पहली चिन्ता का विषय अपनी सुरक्षा और अपने तथा अपने सगों एवं कुटुम्बियों के स्वार्थ होते हैं, ऊँचा करती है। इसी से उनका सच्चा सन्यासीपन सिद्ध होता है। स्वाधीन अमेरिका में और वहां से लौटने पर अपनी जन्मभूमि में स्वाधीनता पूर्वक सत्य संसार के सभी महापुरुषों और शहीदों की तरह वे परिणामों का बिना विचार किये, अपने श्रोताओं की प्रसन्नता या अप्रसन्नता को बिना मन में लाये वे सत्य, आडम्बरशून्य, स्पष्ट, खरे सत्य का प्रचार करते थे-कहने के लिये लौकिक शक्तियों द्वारा उन पर कितना अत्याचार हुआ, यह सर्व साधारण और उनके अनेक प्रेमियों तथा प्रशंसकों को भी बहुत कम मालूम है। उनका सत्य मलिन धन के विचारों या तुच्छ लाभ या हानि के लौकिक अभिप्रायों से अप्रभावित होता था; उनका सत्य "बड़े आदमियों" अर्थात् संसार के करोड़पतियों से शासित या उनकी कृतियों से कलुषित नहीं होता था। शुद्ध सत्य-नीति और सामयिक आवश्यकता के विचारों से शून्य—"सत्य, सम्पूर्ण सत्य और सत्य के सिवाय कुछ नहीं कहने का यह भाव ही उन्हें महा-नायक बनाता है। इसी से

संस्थाओं, सरकारों, सभ्यताओं, रीतियों परिपाटियों, पुरोहितवर्गों, बने हुए सुधारकों, कायर नेताओं और सामान्य पुरुषों की उनकी आलोचना और निन्दा को बल और मूल्य प्राप्त होता है।

स्वामी राम ने मातृभूमि की एक और बड़ी सेवा की है। अनुमान किया गया है कि, इस देश में बावन लाख साधु हैं। इनके सामने उन्होंने बड़ा ऊँचा दृष्टान्त और संन्यास का सच्चा आदर्श रक्खा है। स्वयं अपने ही जीवन और उपदेशों से उन्हों ने संन्यास सम्बन्धी भ्रान्त, बल्कि दुष्ट धारणा की, कि अकर्मण्यता और गृहत्याग तथा फक़ीरी और शारीरिक क्लेश-सहन ही संन्यास है, अनुपयोगिता और निरर्थकता प्रगट कर दी है। वे अपने साथी मनुष्यों में स्वच्छन्दता से रहते और विचरते थे। अत्यन्त उन्नत और सभ्य देशों में उन्होंने लम्बे २ सफ़र किये, सरल भाव से जो कोई उनके पास पहुंचा उससे तर्क-वितर्क किया और उपदेश दिया, व्याख्यान दिये और लिखा, विवाहित जीवन और मांस-भोजन जैसे विषयों पर विवेचन किया और इस प्रकार प्रगट किया कि, संन्यास का अर्थ एकान्तता या अकर्मण्यता या कर्म-त्याग नहीं है। साथ ही इस दावे को भी उचित साबित किया कि, वेदान्त एक ऐसा व्यावहारिक तत्वज्ञान है जो मानव-जीवन के नित्य के जटिल मामलों में और आधुनिक सभ्यता के नये प्रश्नों में काम में लाया जा सकता है। अपने सादे और संयमी तथापि कर्मशील जीवन से उन्हों ने हमारे सब संन्यासियों को यथार्थ मार्ग, जीवन की विधि, सफलता की कुंजी दिखला दी है। इन्हीं की उनकी प्यारी परन्तु उपेक्षित मातृ-भूमि को इस घड़ी बड़ी कड़ी

और बेहिसाब ज़रूरत है। यदि हमारे दो चार लाख साधु भी वेदान्त की अति उच्च शिक्षाओं को समझ कर अपने व्यावहारिक जीवन में उनका चाव से अनुसरण करें, जैसा कि बालब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी राम, और उनके चेले स्वामी नारायण—ये कुछ नाम अटकलपच्चू चुन लिये जाते हैं—आदि के श्रेष्ठ और मानवजाति को ऊपर उठाने वाले आदर्श जीवनों के दृष्टान्तों से प्रगट होता है, तो ओः! भारत के जीवन और दशा में कैसी क्रान्ति हो जाँय, हम लोग क्या से क्या हो जांय, हमारे देश के भविष्य के निर्माण में यह एक कैसा प्रबल और प्रधान अंग हो जाय। इन महात्माओं ने उद्योग और पुनीत कार्य का गौरव बढ़ाया है। उन्होंने दिखला दिया है कि, स्फूर्ति और प्रयत्नमय (यद्यपि निष्काम) कर्मण्यता तथा संघर्ष से परिपूर्ण जीवन संन्यास के सच्चे भाव से असंगत या उसके गौरव को गिरानेवाला नहीं है। सब दुनियवी शुभाशाओं और अपने सकल सांसारिक सम्बन्धों तथा सम्पर्कों का स्वामी राम के द्वारा भरी जवानी और होनहार लौकिक जीवन चरित के प्रारम्भ में ही, विचार सहित और आग्रह पूर्वक त्याग किया जाना—अनेक आदमियों के मार्ग के दो बड़े विघ्न और प्रलोभन—एक और अपूर्व उदाहरण पुरुष के अनेकों में जोड़ता है, जिनके कारण सत्य और मातृभूमि का उन पर उच्च श्रेणी का और अनिवार्य दावा है। विवाह के बन्धन की बेड़ियां इस देश में प्रायः हरेक को बहुत ही जल्दी और असमय में बांध कर असहाय बना देती हैं और विवाहितों को सारे मामले की किसी अवस्था में भी ज़बान हिलाने या अपनी इच्छा प्रगट करने का अवसर नहीं दिया

जाता। ऐसी अवस्था में एक विद्वान शास्त्री और एम, ए, को यह मत उपदेश और प्रतिपादन करते देख-सुन कर मुझे आश्चर्य होता है कि, हमारी माताओं, बहनों और स्त्रियों के प्रति हमारा कर्त्तव्य मातृभूमि भारतजननी या नित्य सत्य, सदाचार और न्याय के प्रति हमारे परम कर्तव्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण उच्चतर और अनिवार्य है। और इनमें से अन्तिम अर्थात् स्त्रियों की उस समय हमसे गांठ जोड़ दीजाती है जब विवाह-बन्धन का उद्देश्य और स्वभाव भी समझने में वे असमर्थ होती हैं।

स्वामी राम स्वार्थत्याग और वैराग्य की विधि (कानून) के श्रेष्ठ उदाहरण की प्रतिमा हैं।

किन्तु अपने संन्यास के ही द्वारा उन्हों ने भारत की महान सेवा और उत्तम उदाहरण का स्थापन नहीं किया है। उनका विद्यार्थी जीवन भी, उनके गुरू को लिखी हुई उनकी चिट्ठियों के छप जाने से जिस पर हाल ही में बड़ा प्रकाश पड़गया है, हमारे विद्यार्थियों और नवयुवकों के मार्गदर्शक का काम देता है और उनकी अनेक कठिनाइयों तथा समस्याओं को हल कर देता है। विद्यालय और महाविद्यालय के जीवन के अपने आचरण से उन्होंने दिखा दिया है कि, इस दरिद्र, अन्ततः आज कल्ह, देश में गरीबी की कठिनता कैसे हल की जा सकती है। उनका आदरभाव और आज्ञापालन, उनकी लज्जाशीलता और विनम्रता, सहपाठियों से उनकी सहानु-भूति, अत्यन्त कठिन अवस्थाओं में भी उनका धैर्य्य और चित्त की शान्ति, निरन्तर रोगी रहने पर भी उद्योग और परिश्रम करने का उनका स्वभाव, आत्म-सम्मान का उनका ज्ञान, एम, ए, पास करने के ठीक बाद ही उनका मुक्तद्वार

अतिथि-सत्कार, संन्यास ग्रहण करने के पूर्व वक्ता की हैसियत से उनकी बड़ी लोकप्रियता और प्रसिद्धि, कलह के लिये उनका कभी न "भखना"–ये कुछ बातें हैं जिनका मुझ पर उनकी प्रायः ११०० चिट्ठियों में से ३०० के पढ़ने में प्रभाव पड़ा।

उपक्रम की ये पंक्तियां लिखने के समय एक घंटे भर भी बिना सूक्ष्म विचार किये उनके अल्प जीवन और उत्कृष्ट उपदेशों के इन कुछ पहलुओं और लक्षणों पर मेरा ध्यान तुरन्त गया। राम को मैंने कभी नहीं देखा और न अब तक विचारपूर्वक उनके उपदेशों के अध्ययन का ही मौक़ा मिला था। उनके अधिकांश देशवासियों को उनके उपदेश अभी असली रूप से अज्ञात हैं। मुझे विश्वास है कि, जितना ही अधिकाधिक वे पढ़े और समझे जायंगे उतनी ही अधिक राम की प्रशंसा होगी और आदर तथा अनुकरण बढ़ेगा। और मुझे जान कर बड़ा ही विस्मय हुआ कि, राम के प्रेमियों और भक्तों की संख्या बहुत बड़ी है; वे समग्र भारत में छाये हुए हैं और अपने देशवासियों पर–उन प्रान्तों के निवासियों पर भी जिनमें वे अपने अल्प जीवन और आचार्यत्व काल में कभी नहीं गये–उन (राम) का कितना अधिक आडम्बरशून्य और मौन प्रभाव पड़ा है। गुजराती, मराठी, हिन्दी और तामील आदि देशी भाषाओं में इन पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है। ये अनुवाद कम और अधिक हो गये हैं। उनकी रचनाओं के उर्दू संस्करण का भार अन्त में स्वामी नारायण ने स्वयं उठाया है।

[इन भाषान्तरों तथा और कई प्रकाशनों के, सम्बन्ध में यहां पर यह समझा देना आवश्यक जान पड़ता

है कि, अनुवाद और फिर छापने का स्वत्व स्वरक्षित कर लिया गया है। परन्तु पैसा कमाने के लिये राम की शिक्षाओं के प्रचार को एक हत्या करने के निरन्तर से नहीं। इससे अधिक नीचता, इससे अधिक हमारे विचारों से दूर और हो ही क्या सकता है। प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की पवित्रता, श्रेष्ठता, शुद्धता और स्वच्छता असंदिग्ध कर देने के लिये ही अनिच्छापूर्वक यह काम करना पड़ा है। यह बड़े ही आश्चर्य और करुणा की बात है कि, अधिकार का इतना उपयोग और कार्य का यह नियमन भी अनेक लोगों द्वारा, जिनसे स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं थी, बिलकुल ही और का और समझा गया है। स्वामी राम के ब्रह्मलीन होने पर टिहरी के महाराज साहब ने स्वामी नारायण को यथा विधि उनका उत्तराधिकारी माना और नियुक्त किया था, तथा स्वयं अपने हाथ से उन्हें राममठ और राम के बक्सों की तालियां आम दरबार में दी थीं। अतएव इन ग्रन्थों पर स्वामी नारायण को पूरा मालिकाना हक (केवल लौकिक अर्थ में) प्राप्त है। उक्त स्वामी जी को उनके स्वार्थों की सुरक्षा आवश्यक प्रतीत होती है, जिन्होंने उनके कहने पर या उनकी सलाह से पहले क्षेत्र में आकर अपना रुपया—किसी ने क़र्ज़ लेकर—फँसाया। ऐसे लोगों के स्वार्थों का उनका ध्यान रखना क्या न्यायसङ्गत नहीं है? क्या यह सत्य नहीं है कि, अधिक घाटा होने पर ये भाई अवश्य हताश होकर और अधिक प्रकाशन का कार्य न करेंगे, जिसके लिये स्वामी नारायण अभी इन्हीं पर निर्भय करते हैं? जिन लोगों ने इस कार्य से एक कौड़ी का भी लाभ न उठाने की प्रतिज्ञा की तथा शपथ ली है और शुद्ध धार्मिक भाव से प्रेम का श्रम समझ कर समस्त कार्य कर रहे हैं, उनको,

आर्थिक लाभ के उद्देश्य से प्रेरित, अनुचित और असामयिक, व्यापारिक प्रतियोगिता से बचाना क्या नैतिक कर्त्तव्य नहीं है? यह विशुद्ध धार्मिक उद्यम यदि मुकदमेबाजी का कारण या विषय बने तो क्या यह एक शोचनीय दृश्य न होगा-राम के प्रति हमारे आदर-भाव पर दुखदायी टीका न होगी?

भाषान्तरों के सम्बन्ध में, उन्हें रोकने और बन्द करने का ज़रा सा भी विचार नहीं है। हमारी उत्कट अभिलाषा है कि, देश की सब भाषाओं में अनुवाद हों ताकि जनता तक भी ये उत्तम ग्रन्थ पहुँचें और यथोचित भाव से इस कार्य के कर्त्ताओं का पूरा स्वागत है। स्वामी नारायण स्वयं अपने सब काम में शुद्धता, स्वच्छता, और साहित्यिक रूप तथा आकार-प्रकार पर बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि रखते और विशेष ध्यान देते हैं। इस लिये यह बहुत ज़रूरी जान पड़ता है कि, जो लोग इन ग्रन्थों का भाषान्तर करने और छापने की सर्वथा योग्यता रखते हैं वेही इस पवित्र काम को उठावें और निरानिर स्वार्थपूर्ण लाभ के अभिप्राय से किसी भाई को यह काम न करना चाहिये, जैसा कि, मुझे कहते खेद होता है, कुछ लोग पहले कर चुके हैं। अनुवादकों और अनुवादों के प्रकाशकों के ही हितार्थ यह आवश्यक है कि, जो लोग ऐसा कर रहे हैं वे हमको अवगत रक्खें ताकि अनावश्यक प्रतियोगिता से उन्हें हानि न उठाना पड़े, क्योंकि ऐसा हो सकता है कि अनेक सज्जन एक ही समय में एक ही भाषा में एक दूसरे के कार्य को बिना जाने अनुवाद प्रकाशित करें। केवल ऐसे उच्च अभिप्रायों से ही दूसरों का साहस नियंत्रित मात्र किया जाता है। इस प्रयत्न का कुछ लोग अनर्थ करें, और कुछ लोग, जो अपने को राम का बड़ा प्रेमी और

प्रशंसक कहते हैं, निन्दा करें, यह करुणाजनक बात है। ऐसी भ्रान्तियों, क्षुद्र द्वेषों, स्वार्थपरता और अन्य दूषणों के, जो विघ्नों का काम देते हैं, शापों से हमारे देश में उत्तम और उपयोगी कार्य को न जाने कब तक हानि पहुंचती रहेगी। कुछ लोगों के द्वारा अधिकार का दुरुपयोग होने पर विवश होकर जो रास्ता हमें लेना पड़ा है उसके कारणों और हमारे अभिप्रायों की अज्ञानता के चलते कुछ भाइयों के मनों में और हाल में जिन भ्रान्तियों और भेदों का उदय हुआ है उनको दूर और मामले को बिलकुल साफ कर देने में ऊपर की पंक्तियां समर्थ होंगी, यह मुझे पूरा भरोसा है।]

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि, भूत की अपेक्षा भविष्य से स्वामी राम का प्रभाव अधिक सम्बन्ध रखता है और जितना इस समय अनुभव किया जाता या ज्ञात है उसकी अपेक्षा इस देश के भावी घटनाचक्र पर उनका अधिक प्रबल और प्रमुख प्रभाव पड़ेगा, जैसा कि प्रभाव वे डालते यदि अचानक और अकाल में हमें न छोड़ जाते। अब वे स्थूल शरीर हमारे बीच में नहीं है, इस लिये उनकी योग्यता और भी अधिक अच्छी तरह जानी, समझी और अनुभव की जायगी। यहां पर मेरा-यह सूचित करना क्या बेमौक़े होगा कि, राम के सच्चे तथा प्रेमी और भक्त, वर्ष में एक बार, यदि सम्भव और सुभीता हो तो, उनकी मृत्यु या जन्म के दिन किसी केन्द्रीय स्थान में या बारी २ से विभिन्न स्थानों में, जहां के भाई आमंत्रित करें, जमा होकर एक साथ राम का अध्ययन और यह निर्णय किया करें कि देश के इस सिरे से उस सिरे तक उनके उपदेशों के समझाने और प्रचार के लिये कौन

उपाय किये जा सकते हैं ?

इस महान उद्योग में जिनसे मुझे अनेक तरह पर बड़ी और मूल्यवान सहायता मिली है उन्हें केवल धन्यवाद देना अब मेरे लिये बाकी रह गया है। स्वामी नारायण आदि से अन्त तक मेरे पथप्रदर्शक और सहायक रहे हैं। उनके बिना मैं यह काम कर ही न पाता। कुछ सज्जनों ने अपनी समालोचनाओं और मूल्यवान सूचनाओं से, कुछने भाषा में आवश्यक परिवर्तनों और संशोधनों द्वारा, कुछने मूल-लेखों की नकल और टाइप करके, कुछने मेरे प्रूफ देखते समय मूलको पढ़ कर, कुछने पुस्तकें बाहर भेजने के छोटे काम तक में भी मेरी सहायता की है। और अन्त में, किन्तु यह तुच्छ बात नहीं है, अनेकों ने इस प्रकाशन की दूसरों को सूचना देने और उन्हें पुस्तकें मंगाकर पढ़ने को सन्नद्ध करने में तत्परता और उत्साह से साथ दिया है। यदि मैं कुछ के भी नाम लिखूं तो यह दीर्घ अवतरण और भी बहुत बढ़ जाय अतएव मैं इस अवसर पर उन सबको सच्चे हृदय से धन्यवाद देता हूँ और याद दिलाता हूँ कि अभी उन्हें बहुत कुछ करना है।

राम के चुने हुए कल्याणों की वर्षा उन पर हो। ईश्वर करे सत्य और न्याय का झंडा उठाना और रामके श्रेष्ठ तथा ऊपर उठाने वाले उदाहरण का अनुकरण करना अनेकों के भाग्य में पड़े।

दिल्ली, अमीरचन्द।

२६ अप्रैल, १९१३।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

स्वामी रामतीर्थ।

सफलता की कुंजी।

टोकियो (जापान) के हाई कमर्शल कालेज में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ का व्याख्यान।

भाइयो,

भारत की अपेक्षा जापान जिस विषय का व्यवहार ज़ाहिरा अधिक बुद्धिमानी से कर रहा है उस पर एक अभ्यागत भारतीय का व्याख्यान देना क्या आश्चर्य-जनक नहीं है? होगा। किन्तु एक से अधिक कारणों से मैं आप लोगों के सामने उपदेश देने खड़ा हुआ हूँ।

किसी विचार को दक्षतापूर्वक अमल में लाना एक बात

है और उसके तत्त्व को समझ लेना दूसरी बात है। किन्हीं सामान्य सिद्धान्तों के बर्तने से यदि कोई राष्ट्र आज फल-फूल भी रहा हो तो भी उसके पतन का पूरा २ खतरा है, यदि राष्ट्रीय चित्त ने उन सिद्धान्तों को भली भांति नहीं समझ लिया है और गम्भीर कल्पना से वे (सिद्धान्त) अनुमोदित नहीं हैं। सफलता पूर्वक किसी रासायनिक प्रयोग को करने वाला मजूर रसायन-शास्त्री नहीं बन जाता। क्यों कि उसका कार्य कल्पना या युक्ति से परिपूर्ण नहीं है। अंजन को सफलतापूर्वक चलाने वाला कोयला-झोंकू इंजनियर नहीं हो सकता, क्योंकि वह कल की तरह एक बंधे ढर्रे पर काम करता रहता है। हमने एक जर्राह की कहानी पढ़ी है जो घावों को एक सप्ताह तक पट्टी से बंधा रख कर और नित्य तलवार से छूकर अच्छा कर देता था। खुले न रहने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे। किन्तु वह तलवार के स्पर्श में अच्छा करने की विचित्र शक्ति बताता था। उसके रोगी भी ऐसाही समझते थे। इस अंधविश्वासमय कल्पना के कारण अनेक ऐसे मामलों में, जिन्हें केवल बन्धन के सिवाय किसी अन्य दवा की भी ज़रूरत थी, बार २ असफलता पर असफलता हुई। इस लिये ठीक उपदेश और ठीक प्रयोग का साथ रहना बहुत ही जरूरी है। दूसरे, मैं जापान को अपना देश समझता हूं और जापानियों को अपने देश-वासी। मैं युक्तिपूर्वक सिद्ध कर सकता हूँ कि आपके पूर्वज प्रारम्भ में भारत से आये। तुम्हारे पूर्वज मेरे पूर्वज हैं। इस लिये तुम्हारे भाई की तरह तुम से हाथ मिलाने आया हूँ, न कि परदेशी की तरह। एक और भी हेतु है जो मुझे समान भाव से इस स्वत्व का अधिकारी बनाता है। जन्म से ही मैं स्व-

भाव, ढंगों, आदतों और सहानुभूतियों में जापानी हूँ। इस भूमिका के बाद मैं अपने विषय पर आता हूँ।

सफलता की कुंजी एक खुला हुआ रहस्य है। हरेक आदमी इस विषय पर कुछ न कुछ कह सकता है, और इसके सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन शायद आपने अनेक बार सुना होगा। परन्तु विषय यह इतने मार्के का है कि लोगों के मनों में बैठाने के लिये जितना भी इस पर जोर दिया जाय ठीक ही है।

सफलता का पहला सिद्धांतः—कार्य।

शुरू में हमें यह प्रश्न अपने इर्दगिर्द की प्रकृति से करना चाहिये। "बहते हुए नालों की" सब "किताबें, और शिलाओं के उपदेश" असंदिग्ध स्वरों से निरन्तर, अविरत कार्य के मंत्र का प्रचार कर रहे हैं। प्रकाश से हमें देखने की शक्ति मिलती है। प्रकाश सब प्राणियों को एक मूलस्रोत देता है। आओ देखें कि स्वयं प्रकाश इस विषय पर क्या प्रकाश डालता है। उदाहरण के लिये मैं साधारण प्रकाश, दीपक को लेता हूं। दीपक की प्रभा और उज्ज्वलता का मूल मंत्र यही है कि वह अपनी बत्ती और तेल को नहीं बचाता है। बत्ती और तेल या तुच्छ स्वयं निरन्तर खर्च किया जा रहा है और गौरव इसका स्वाभाविक परिणाम होता है। यही तो बात है। दीपक कहता है, अपने को बचाते ही तुम तुरन्त बुझ जाओगे। यदि तुमने अपने शरीरों के लिये चैन और आराम चाही, यदि विलासिता और इन्द्रियों के सुखों में तुमने अपना समय नष्ट किया तो तुम्हारी ख़ैर नहीं है। दूसरे शब्दों में, अकर्मण्यता तुम्हें मृत्यु के मुख में डालेगी और कर्मण्यता, केवल कर्मण्यता ही जीवन है। बंधे हुए तालाब और बहती हुई

नदी को देखो। नदी का झरझराता हुआ बिल्लौरी पानी सदा ताजा, स्वच्छ, मनोहर और पीने के योग्य रहता है। किन्तु, इसके विपरीत, बँधे हुए सरोवर का जल, देखिये तो सही, कैसा मैला, गंदला, बदबूदार, दुर्गन्धयुक्त और घिनौना होता है। यदि आप सफलता चाहते हैं तो कार्य का रास्ता पकड़िये, नदी की निरन्तर गति का अनुकरण कीजिये। उस मनुष्य के लिये कोई आशा नहीं है जो अपनी बत्ती और तेल को खर्च करने से बचाने में नष्ट करना चाहता है। सदा आगे बढ़ने, दूसरी वस्तुओं को सदा अपने रूप में मिलाते रहने, सदा अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने, और बराबर काम करने की नदी की नीति बर्तो। सफलता का पहला सिद्धान्त है काम, काम, विश्रामहीन काम। "अच्छे से बहुत अच्छे होते हुए नित्य प्रति अपने आप से आगे बढ़ना"।

यदि आप इस सिद्धान्त पर काम करें तो आप देखेंगे कि "छोटा बनना जितना सहज है बड़ा बनना भी उतना ही"।

दूसरा सिद्धान्तः—आत्मबलि।

हरेक मनुष्य सफेद चीजों को प्यार करता है। उनके सार्वभौम प्रेमपात्र होने का कारण जानना चाहिये। सफेद की सफलता का सबब हमें समझाना चाहिये। काली चीजों से सब कहीं घृणा की जाती है। वे सर्वत्र उपेक्षित होती हैं, कहीं भी उनका आदर नहीं होता। इस तथ्य को मान कर हमें इसका कारण जानना चाहिये। पदार्थ-विज्ञान हमें रंग के चमत्कार की असलियत बताता है। लाल लाल नहीं है, हरा हरा नहीं है, काला काला नहीं है, और सभी चीजें जैसी दिखाई पड़ती हैं वैसी नहीं हैं। लाल गुलाब लाल

रंग को लौटाने या प्रतिक्षेप करने से ही अपना सुहावना (लाल) रंग पाता है। सूर्य की किरणों के और सब रंग गुलाब अपने में लीन कर लेता है और गुलाब को उन रंगों का कोई नहीं कहता। हरी पत्ती प्रकाश के अन्य सब रंगों को अपने में लीन कर लेती है किन्तु जिस रंग को वह ग्रहण नहीं करती तथा लौटा देती है उसी की बदौलत वह ताजी और हरित जान पड़ती है। काले पदार्थों में सब प्रकाशों को अपने में लीन कर लेने और किसी को भी प्रतिबिम्बित न करने का गुण होता है। उनमें आत्म-त्याग और दान का भाव नाम मात्र को भी नहीं होता। वे एक किरण का भी त्याग नहीं करते। वे जो कुछ प्राप्त करते हैं उसका जरा सा भी अंश नहीं लौटाते। प्रकृति आपको बतलाती है कि जो कोई अपने पड़ोसी को अपनी प्राप्ति देने से इनकार करता है वह काला, कोयले के समान काला दिखाई पड़ता है। देना ही पाने का उपाय है। सर्वस्व-त्याग, जो कुछ मिले वह सब का सब तुरन्त अपने पड़ोसियों को दे डालना ही सफेद मालूम होने की कुंजी है। सफेद वस्तुओं के इस गुण को प्राप्त कीजिये और आप सफल होंगे। सफेद से मेरा मतलब क्या है? यूरोपीय? केवल यूरोपीय ही नहीं, सफेद शीशा, सफेद मोती, सफेद बत्तक, सफेद बरफ, विशुद्धता और शुचिता के सभी चिन्ह आपके महान गुरू हैं। इस लिये बलिदान की भावना को पान करो और जो कुछ तुम्हें मिले उसे दूसरों पर प्रतिबिम्बित करो। स्वार्थपूर्ण शोषण का आश्रय न लो और तुम सफेद हो जाओगे। अंकुरों में फूट कर वृक्ष बनने के लिये बीज को अपने को मिटाना पड़ता है। इस प्रकार पूर्ण आत्मोत्सर्ग का अन्तिम परिणाम सफलता है। सभी शिक्षक मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे.

कि ज्ञान का प्रकाश जितना ही अधिक हम फैलाते हैं उतना ही अधिक हम प्राप्त करते हैं।

तीसरा सिद्धान्तः—आत्मविस्मृति।

विद्यार्थी जानते हैं कि अपनी साहित्यिक सभाओं में व्याख्यान देते समय ज्यों ही उनके चित्त में यह विचार प्रबलता प्राप्त करता है कि "मैं व्याख्यान देता हूँ" उनका व्याख्यान बिगड़ जाता है। काम में अपने तुच्छ स्वयं को भूल जाओ और दिलोजान से उसमें लग जाओ, तुम सफल होगे। यदि तुम विचार कर रहे हो तो विचार ही बन जाओ और तब तुम्हें सफलता होगी। यदि तुम काम में लगे हो तो स्वयं काम ही बन जाओ। और सफलता का केवल यही उपाय है।

मैं कब मुक्त हूँगा?
जब "मैं" न रह जायगी।

दो भारतीय राजपूतों की एक कहानी है। ये दोनों भारत के मोगल सम्राट अकबर के पास गये और नौकरी मांगी। अकबर ने उनकी योग्यता पूछी। उन्होंने कहा, हम शूरवीर हैं। अकबर ने उनसे इस कथन का प्रमाण देने को कहा। दोनों ने अपने खंजर मियान से निकाल लिये। अकबर के दरबार में दो बिजलियां कौंधने लगीं। खंजरों की चमक दोनों वीरों की आन्तरिक शूरता का प्रतिरूप थी। तुरन्त दो कौंधे दोनों शरीरों में मिल गये। दोनों ने अपने २ खंजर की नोक दूसरे की छाती पर रक्खी और दोनों ही ने निर्मम शान्ति से खंजरों पर दिल कर अपनी शूरता का प्रमाण दिया। शरीर गिरे, आत्माओं का मेल हुआ, और वे वीर सिद्ध हुए। उन्नति के इस युग में यह कहानी बीभत्स है। मेरा संकेत कहानी की ओर नहीं है। उसकी शिक्षा पर

ध्यान दीजिये। इससे यही शिक्षा मिलती है, अपने तुच्छ स्वयं को उत्सर्ग कर दो, अपने काम के करने में इस तुच्छ स्वयं को भूल जाओ, और सफलता तुम्हारे सामने आकर हाजिर होगी। इसके विरुद्ध होही नहीं सकता। क्या यह मैं नहीं कह सकता कि सफलता प्राप्त करने के पूर्व ही काम करने में ही सफलता की आपकी आकांक्षा का अन्त हो जाना चाहिये?

चौथा सिद्धान्तः—सार्वभौम प्रेम।

प्रेम सफलता का एक और सिद्धान्त है। प्यार करो और प्यार पाओ, यही लक्ष्य है। हाथ को अपने जीवन के लिये शरीर के सब अङ्गों को प्यार करना पड़ेगा। यदि वह अपने को अलग करके सोचने लगे कि "मेरी कमाई का लाभ समग्र शरीर क्यों उठावे" तो उसकी कुशल नहीं, उसे मरना पड़ेगा। संगत स्वार्थपरता के विचार से, केवल अपने परिश्रम –वह कलमी हो या तलवारी आदि–की चोट से प्राप्त मांस और पेय को हाथ को मुख में न रखना चाहिये, उसे उचित है कि सब प्रकार के पौष्टिक भोजनों को अपनी ही खाल में भरकर दूसरे अंगों को अपने परिश्रम के फल में भाग न लेने दे। यह सत्य है कि इस भराव अथवा मधुमक्खी या बर्रैया के डंक से हाथ मोटा हो सकता है। परन्तु ऐसी मोटाई हित की अपेक्षा अहित ही अधिक करती है। सूजन तरक्की नहीं है और पीड़ित हाथ अपनी खुदगर्जी के कारण अवश्य मर जायगा। हाथ तभी समृद्ध हो सकता है जब उसे शरीर के और सब अंगों के स्वयं से अपने आप की एकता का असली अनुभव हो और समग्र की भलाई से अपने आपकी भलाई को अलग न करले।

सहकारिता प्रेम का ऊपरी प्रकाशन मात्र है। सहकारिता की उपयोगिता के सम्बन्ध में आप बहुत कुछ सुनते रहते हैं। विस्तारपूर्वक उस पर कुछ कहना अनावश्यक है। आपके भीतरी प्रेम से उस सहकारिता का उद्भव होना चाहिये। प्रेममय हो जाते ही आप सफल हैं। जो व्यापारी अपने ग्राहक के स्वार्थों को अपने ही नहीं समझता वह सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। फलने-फूलने के निमित्त उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना चाहिये। उसे दिलोजान से उनकी सेवा करना चाहिये।

पांचवा सिद्धान्तः—प्रसन्नता।

दूसरी वस्तु जो सफलता के सम्पादन में महत्वपूर्ण भाग लेती है, प्रसन्नता है। मेरे भाइयो, तुम स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त हो। तुम्हारे खिलते हुए चेहरों की मुसक्यान देख कर मुझे आनन्द होता है। तुम मुस्कुराते हुए फूल हो। तुम मानवजाति की हँसती हुई कलियाँ हो। तुम मूर्तिमान प्रसन्नता हो। मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि समय के अन्त तक अपने जीवन का यह लक्षण कायम रक्खो। अब हमें यह विचारना है कि इसकी रक्षा कैसे हो सकती है।

अपने प्रयत्नों के पुरस्कार के लिये चिन्तित न हो; भविष्य की परवाह न करो, संशयों को त्याग दो, सफलता और असफलता का विचार न करो। कार्य्य के लिये कार्य करो। काम अपना पुरस्कार आपही है। भूत पर विना खिन्न हुए और भविष्य की विना चिन्ता किये जीवित वर्तमान में काम करो, काम करो, काम करो। यह भाव तुम्हें सब अवस्थाओं में प्रसन्न रक्खेगा। जीवित बीज को फलने फूलने के लिये हवा, पानी और मट्टी की जितनी मात्रा की जरूरत है

उसे वह लगाव या सम्बन्ध के अलंध्य नियम से अपनी ओर खींच ही लेगा। इसी प्रकार प्रकृति प्रसन्नचित्त कर्मठ कार्य-कर्त्ता को हर प्रकार की सहायता का वचन देती है। "जो कुछ हमें प्राप्त है उसका सदुपयोग ही अधिक प्रकाश पाने का साधन है।" यदि एक अँधेरी रात में तुम्हें बीस मील की यात्रा करना है और तुम्हारे हाथ के प्रकाश की रोशनी केवल दस फीट ही तक जाती है तो समग्र अप्रकाशित रास्ते का विचार न करो, बल्कि प्रकाशित फासला चल डालो और दस फीट रास्ता और आप ही रोशन हो जायगा फिर कोई भी स्थल तुम्हें अँधेरा न मिलेगा। इसी तरह किसी वास्तविक,उत्सुक कार्यकर्त्ता को एक आवश्यक नियम के अनुसार अपने मार्ग में कहीं भी अँधेरी भूमि नहीं मिलती है। तो फिर घटना के सम्बन्ध में बेचैन होकर दिल को ओछा हम क्यों करें? जो लोग तैरना नहीं जानते वे यदि अचानक झीलमें गिर पड़ें तो केवल अपनी समचित्तता को बनाये रख कर अपने को बचा सकते हैं। मनुष्य का जातीय गुरुत्व जल से कम होने के कारण वह उतराता रहेगा। किन्तु साधारण मनुष्यों के चित्त की स्थिरता जाती रहती है और उतराते रहने के अपने प्रयत्न के ही कारण वे डूब जाते हैं। इसी तरह भावी सफलता के लिये व्यग्रता स्वयं ही प्रायः असफलता का कारण होती है।

सफलता के पीछे दौड़ने और भविष्य से चिपटनेवाले विचार के स्वभाव को हमें जान लेना चाहिये। वह ऐसा है। एक मनुष्य अपनी ही छाया पकड़ने को जाता है। अनन्त समय तक वह भले ही दौड़ता रहे परन्तु अपनी छाया को कदापि, कदापि न पकड़ पावेगा। किन्तु छाया की ओर पीठ करके

सूर्य की ओर अवलोकते हो, देखो तो सही! वही छाया उसके पीछे दौड़ने लगती है। ज्योंही तुम सफलता की ओर अपनी पीठ फेरते हो, ज्योंही तुम परिणामों की चिन्ता त्याग देते हो, ज्यों ही तुम अपनी उद्योग-शक्ति अपने उपस्थित कर्त्तव्य पर एकाग्र करते हो त्योंही सफलता तुम्हारे साथ हो जाती है, बल्कि तुम्हारे पीछे २ दौड़ने लगती है। अतः सफलता का अनुसरण करो, सफलता को अपना लक्ष्य न बनाओ। तभी और केवल तभी सफलता तुम्हें ढूँढ़ेगी। किसी न्यायालय में विचारक को, अपना इजलास लगाने के लिये वादियों-प्रतिवादियों, वकीलों और चपरासियों आदि को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ती। स्वयं न्यायाधीश के अपने न्यायासन पर बैठ जाने भर की जरूरत है और सम्पूर्ण रंगशाला आप ही आप उसके सामने प्रगट हो जाती है। प्यारे मित्रो! यही बात है। बड़ी प्रसन्नता से अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहो और सफलता के लिये तुम्हें जो कुछ भी आवश्यक है सब तुम्हारे पैरों पर आकर गिरेगा।

छटा सिद्धान्तः—निर्भीकता।

जिस दूसरी बात की ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ और जिसकी सत्यता स्वानुभव से सिद्ध करने को मैं आपसे आग्रह करूँगा वह निर्भीकता है। एक ही नज़र से सिंह वशीभूत किये जा सकते हैं, एक ही दृष्टि से शत्रु शान्त किये जा सकते हैं, एक ही निर्भय चोट से विजय प्राप्त की जा सकती है। हिमालय की घनी घाटियों में मैं घूमा हूँ। चीते, रीछ, भेड़िये और विषैले जन्तु मुझे मिले हैं। कोई हानि मुझे नहीं पहुँची। जंगली जानवरों पर अशंक भाव से सीधी दृष्टि डाली गई, नज़र से नज़र मिली,

खूनी पशु परागये तथा भयंकर कहेजाने वाले जीव कुपित होकर चल दिये। यही दशा है। निर्भय बनो और कोई तुम्हें हानि न पहुँचा सकेगा।

कबूतर बिल्ली के सामने किस तरह अपनी आँखें बन्द कर लेता है, शायद आपने देखा होगा। कदाचित वह समझता है कि बिल्ली उसे नहीं देखती, क्योंकि वह बिल्ली को नहीं देखता। तब क्या होता है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और उसे खालेती है। निर्भयता से चीता भी पालतू बना लिया जाता है और डरनेवाले को बिल्ली भी खा जाती है।

आपने शायद देखा होगा कि थर्राता हुआ हाथ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में कोई तरल पदार्थ ठीक २ नहीं उंडा सकता। वह अवश्य गिर जायगा। किन्तु एक स्थिर अशंक हाथ बिना एक बूँद भी गिराये बहुमूल्य तरल पदार्थ को उलट पुलट सकता है। पुनः प्रकृति आप को अजेय ओजस्विता से शिक्षा दे रही है।

एक बार एक पंजाबी सिपाही जहाज पर किसी दुष्ट रोग से पीड़ित हुआ। डाक्टर ने उसे जहाज से फेंक दिये जाने का अपना अन्तिम आदेश निकाला। डाक्टर, ये डाक्टर कभी २ प्राण-वध के दण्ड देते हैं। सिपाही को इसका पता लग गया। शत्रु से घिर जाने पर साधारण लोगों में भी निर्भयता चमक उठती है। असीम शक्ति से सिपाही उछल पड़ा और निर्भय होगया। वह सीधा डाक्टर के पास गया और अपनी पिस्तौल उसकी ओर सीधी करके बोला, "मैं बीमार हूँ? तुम ऐसा कहते हो? मैं तुम्हें गोली मार दूँगा"। डाक्टर ने तुरन्त ही उसे स्वस्थता का प्रमाणपत्र

दे दिया। निराशा ही निर्बलता है, इससे बचो। निर्भयता ही सारी शक्ति का मूल है। मेरे शब्दों—निर्भयता—पर ध्यान दो। निर्भय हो जाओ।

सातवां सिद्धान्तः—स्वावलम्बन।

अन्त में, किन्तु तुच्छ नहीं, बल्कि, सफलता का मार्मिक सिद्धान्त अथवा स्वयं कुंजी स्वावलम्बन या आत्म-निर्भरता है। यदि मुझसे कोई एक शब्द में मेरा तत्त्वज्ञान बताने को कहें तो मैं कहूँगा "स्वावलम्बन" आत्मा का ज्ञान। ऐ मनुष्य! सुन, अपने को जान। वह सच है, अक्षरशः सच है कि जब आप अपनी सहायता करते हैं तो ईश्वर भी आप की सहायता करता ही है। दैव आपकी सहायता करने को बाध्य है। यह सिद्ध किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है कि आपका अपना स्वयं ही ईश्वर, अनन्त, सर्वशक्तिमान है। यह एक वास्तविकता, एक सत्यता है, जो प्रयोग से प्रमाणित होने की प्रत्याशा कर रही है। सच मुच, सच मुच, अपने पर निर्भर करो और तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे सामने असम्भव कुछ भी नहीं है।

सिंह वन-राज है। वह अपने आप पर निर्भर करता है। वह हिम्मती, बली, और सब कठिनाइयों को जेता है, क्योंकि वह स्वस्थ (अपने में स्थित) है। हाथी, जिन्हें यहूदियों ने पहले पहल भारत के जंगलों में देखकर "गतिशील भूधर" कहा था और ठीक कहा था, अपने शत्रुओं से सदा भयभीत रहते हैं। वे हमेशा दल बांध कर रहते हैं और सोते समय अपनी रक्षा के लिये पहरुए नियुक्त कर देते हैं, और उनमें से कोई भी अपने ऊपर या अपनी सामर्थ्य पर नहीं भरोसा करता। वे अपने को निर्बल समझते हैं और नियम के अनुसार उन्हें

निर्बल होना पड़ता है। सिंह की एक साहसपूर्ण झपट उन्हें भयभीत कर देती है और हाथियों का सम्पूर्ण समूह घबड़ा जाता है, यद्यपि एक ही हाथी—चलता-फिरता पहाड़-कोड़ियों सिंहों को अपने पैरों से कुचल डाल सकता है।

दो भाइयों की, जिन्हों ने पैतृक सम्पत्ति को सम-भाग में बांटा था, एक बड़ी ही शिक्षाप्रद कहानी प्रचलित है। कुछ वर्षों के बाद एक तो गरीब हो गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति अनेकगुणी बढ़ाली। जो "लक्षाधीश" हो गया था उसने किसी के "क्यों और कैसे" प्रश्न के उत्तर में कहा, मेरा भाई सदा कहा करता था "जाओ, जाओ" और मैं सदा कहा करता था 'आओ, आओ"। इसका अर्थ यह है कि उनमें से एक स्वयं तो अपने मुलायम गद्दों पर पड़ा रहता था और नौकरों को आज्ञा दिया करता था "जाओ, जाओ, अमुक काम करो" और दूसरा अपने काम पर सदा खुद मुस्तैद रहता था और अपने सेवकों से सहायता मांगता था, "आओ, आओ, यह करो"। एक अपनी शक्ति पर निर्भर करता था और नौकरों तथा धन की वृद्धि हुई। दूसरा अपने नौकरों को आज्ञा देता था "जाओ, जाओ"। वे चले गये और सम्पत्ति ने भी उसकी "जाओ, जाओ" की आज्ञा का पालन किया और वह अकेला रह गया। राम कहता है। "आओ, आओ" और मेरी सफलता तथा आनन्द में हिस्सा लो। भाइयो, मित्रो, और देशवासियो! यह मामला है। मनुष्य अपने भाग्य का आप ही मालिक है। यदि जापान-वासी अपने समक्ष मुझे अपने विचार प्रकट करने का और अवसर दें तो यह दिखलाया जा सकता है कि किस्से-कहानियों और पौराणिक कथाओं पर विश्वास करने और अपने

से बाहर हमें अपना केन्द्र मानने का कोई युक्ति-संगत आधार नहीं है। एक गुलाम भी स्वतंत्र होने ही के कारण गुलाम है। स्वाधीनता के ही कारण हम सुखी हैं, अपनी स्वाधीनता के ही चलते हम कष्ट भोगते हैं, और हमारी स्वाधीनता ही हमें गुलाम बनाती है। तो फिर हम विलंप और कॉय २ क्यों करें और अपनी सामाजिक तथा शारीरिक स्वाधीनता के लिये अपनी स्वतंत्रता का उपयोग क्यों न करें?

राम जो धर्म जापान में लाया है वह यथार्थ में वही है जो सदियों पूर्व बुद्ध के अनुयायी यहां लाये थे। परन्तु वर्तमान युग की ज़रूरतों के उपयुक्त होने के लिये निपट भिन्न स्थिति-विन्दु से उसी धर्म के उहापोह की आवश्यकता है। पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान और तत्त्वज्ञान के प्रकाश में उसे प्रकाशित करने की जरूरत है। मेरे धर्म के मूल और आवश्यक सिद्धान्तों का वर्णन जर्मन कवि गेटे के शब्दों में यूँ हो सकता है:—"मैं तुम्हें बताता हूँ कि मनुष्य का परम व्यवसाय क्या है, मुझसे पूर्व कोई जगत नहीं था, यह मेरी सृष्टि है। वह मैं ही था जिसने सूर्य को समुद्र से निकाल कर उठाया, चन्द्र ने अपनी परिवर्तनशील गति मेरे साथ शुरू की"।

एक वार इसका अनुभव करो और तुम इसी क्षण स्वतंत्र हो। एक वार इसका अनुभव करो और तुम सदा सफल हो। एक वार इसका अनुभव करो और महा मैले कारागार ठौर ही नन्दन कानन में बदल जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सफलता का रहस्य।

(ता० २६-१-१९०३ को सैन फ्रांसिस्को नगर के गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान।)

(टोकियों के छोटे से व्याख्यान की अपेक्षा इसमें बहुत अधिक विस्तार किया गया है—सम्पा०)

तीन लड़कों को उनके गुरू ने आपस में समभाग में बाँट लेने के लिये एक मुद्रा दी। उन्होंने रुपये से कोई चीज़ खरीदने का निश्चय किया। उनमें से एक लड़का अंग्रेज, एक हिन्दू और तीसरा ईरानी था। उनमें से कोई भी दूसरे की भाषा भली भांति नहीं समझता था। इस लिये उन्हें यह निश्चय करने में कुछ कठिनता पड़ी कि कौन सी वस्तु मोल लीजाय। अंग्रेज बालक ने "वाटर मेलन" (तरबूज) खरीदने की जिद् की। हिन्दू लड़के ने कहा, "नहीं, नहीं मैं हिंदवाना पसन्द् करूंगा"। तीसरे लड़के, ईरानी ने कहा, "नहीं नहीं हमें तरबूज लेना चाहिये"। इस तरह वे निश्चय न कर सके कि कौन सी वस्तु खरीदी जाय। जिसको जो वस्तु पसन्द् थी उसने वही मोल ली जाने पर जोर दिया, दूसरों की प्रवृत्ति की हरेक ने उपेक्षा की। उनमें अच्छा खासा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। वे सड़क पर चलते २ झगड़ते जाते थे। वे एक ऐसे मनुष्य के पास से होकर निकले जो इन तीनों भाषाओं अंग्रेजी, फारसी और हिन्दुस्थानी को समझता था। इस मनुष्य को लड़कों के झगड़े में बड़ा मजा आया। उसने उनसे कहा कि तुम्हारा झगड़ा मैं निपटा सकता हूँ। तीनों ने उसे अपना अभियोग सुनाया और उसका फैसला मानने को राजी हुए। इस मनुष्य ने उनसे मुद्रा लेली और कोने में

ठहरने को कहा। वह स्वयं एक खटिक की दुकान पर गया और एक बड़ा सा तरबूज मोल लिया। उसने इसे लड़कों से छिपाये रक्खा और एक २ करके तीनों को बुलाया। पहले उसने अंग्रेज बालक को बुलाया और उससे छिपा कर तरबूज को तीन सम भागों में काट एक टुकड़ा अंग्रेजी बालक को देकर बोला "यही वस्तु तुम चाहते थे?" लड़का बहुत खुश हुआ। प्रसन्नता और कृतज्ञता से स्वीकार कर कूदता, नाचता और यह कहता हुआ वह चल दिया कि यही वस्तु मैं चाहता था। इसके बाद भद्रपुरुष ने इरानी लड़के से अपने पास आने को कहा और दूसरा टुकड़ा देकर पूछा, यही चीज तुम माँगते थे। ईरानी लड़का खुशी से फूल कर कुप्पा हो गया और बोला, "यही मेरा तरबूज है, यही मैं चाहता था।" तिस पीछे हिन्दू लड़का पुकारा गया और तीसरा टुकड़ा उसे दिया गया। उससे पूछा गया "इसी वस्तु की तो तुम्हें अभिलाषा थी" बालक बड़ा संतुष्ट हुआ। उसने कहा, "यही मैं चाहता था, यही मेरा हिंदवाना है।"

झगड़ा या बखेड़ा क्यों हुआ? छोकड़ों में मनमोटाव किस बातने पैदा किया? केवल नामों ने। एक मात्र नामों ने, और कुछ नहीं। नामों को हटा दो, नामों के परदे के पीछे झाँको, अरे! अब तो दिखाई पड़ता है कि तीनों विरोधी नाम, "वाटरमेलन", हिंदवाना और तरबूज, एक और उसी चीज़ के सूचक हैं। तीनों नामों के नीचे एकही वस्तु है। यह हो सकता है कि फारस का तरबूज इंग्लैंड के तरबूज से कुछ भिन्न होता हो और यह भी हो सकता है कि भारत के तरबूज इंग्लैंड के तरबूजों से कुछ भिन्नता रखते हों, परन्तु वास्तव में फल एकही है। वह एकही

वही वस्तु है । छोटे भेदों की उपेक्षा की जा सकती है ।

इसी प्रकार विभिन्न धर्मों के विवादों, झगड़ों, मनोमालिन्यों और वादविवादों पर राम को हँसी आती है । इसाई यहूदियों से लड़ रहे हैं, यहूदी मुसलमानों से झगड़ते हैं, मुसलमानों का ब्राह्मणों से विवाद चल रहा है, ब्राह्मण बौद्धों में त्रुटियां निकाल रहे हैं और बौद्ध उसी तरह बदला चुका रहे हैं । ऐसे झगड़े बड़े मनोरञ्जन की चीज हैं । इन झगड़ों और मनोमालिन्यों का कारण मुख्यतः नाम हैं । नामों का घूँघट उतार डालो, नामों का परदा समेट दो, उनके (नामों के) पीछे देखो, वे जो कुछ सूचित करते हैं उसकी ओर देखो और तब तुम्हें अधिक भेद न मालूम होगा ।

राम प्रायः "वेदान्त" शब्द का, जो एक नाम है, व्यवहार करता है । इसी नाम का द्वेष कुछ लोगों को राम से कुछ भी सुनने के विरुद्ध कर देता है । एक मनुष्य आता है और वह बुद्ध के नाम से उपदेश देता है । बहुतेरे लोग उसे नहीं सुनना चाहते, क्यों कि वह एक ऐसा नाम उनके पास लाता है जो उनके कानों को नहीं रुचता । कृपया कुछ अधिक समझदार बनो । यह बीसवी सदी है, नामों से ऊपर उठने का समय आये बहुत काल हुआ । राम जो कुछ तुम्हारे लिये लाता है, अथवा दूसरा कोई व्यक्ति जो कुछ तुम्हारे लिये लाता है उसके दोष गुणों को परखो । नामों के भ्रम-जाल में न उलझो, नामों के धोखे में न पड़ो । हरेक चीज की जांच करो, देखो वह काम की है या नहीं । कोई धर्म सब से प्राचीन है, इसी लिये उसे न ग्रहण करलो । सर्व-प्राचीनता उसके सत्य होने का कोई प्रमाण नहीं । कभी २ सब से पुराने घर गिरा देने के और सब से पुराने कपड़े बदलने के योग्य होते

हैं। नया से नया नव-मार्ग, यदि वह तर्क की परीक्षा में ठहर सकता है, चमकते हुए ओसकण से सुशोभित गुलाब के ताजे फूल के समान उत्तम है। नवीनतम होने ही के कारण किसी धर्म को न ग्रहण करलो। नवीन चीजें सदा सर्वोत्तम नहीं हुआ करतीं, क्यों कि समय की कसौटी पर व नहीं कसी गई हैं। किसी धर्म को मानवजाति का अति-अधिक अंश मानता है, इसी लिये उसे ग्रहण न करो, क्यों कि मानव जाति का बहुत बड़ा भाग व्यवहारतः शैतानी धर्म पर, अविद्या के धर्म पर विश्वास रखता है। एक समय था जब मनुष्य जाति का बहुत बड़ा भाग गुलामी को ठीक समझता था। परन्तु गुलामी की रीति उत्तम होने का यह कोई प्रमाण नहीं है। किसी धर्म पर चुने हुए कुछ लोगों का विश्वास है, इसी लिये उस पर विश्वास न करो। कभी २ किसी धर्म को ग्रहण करने वाले थोड़े से लोग अन्धकार में, भ्रान्ति में होते हैं। कोई धर्म इसी लिये मान्य नहीं है कि उसकी प्राप्ति एक महान साधु से, पूर्णत्यागी से हो रही है, क्यों कि हम देखते हैं कि बहुतेरे साधु, बहुतेरे सर्व त्यागी पुरुष कुछ भी नहीं जानते, सचमुच पूरे धर्मान्ध हैं। किसी धर्म के प्रवर्तक राजकुमार या राजा हैं, इसी लिये उसे ग्रहण न करो, क्यों कि राजा महाराज प्रायः अध्यात्म-दरिद्र होते हैं। कोई धर्म इसी लिये ग्राह्य न समझो कि उसका संस्थापक बड़ा सच्चरित्र था, क्यों कि सत्य की व्याख्या करने में बड़े से बड़े चरित्रवानों का प्रायः असफलता हुई है। सम्भव है कि किसी मनुष्य की पाचन-शक्ति बड़ी ही प्रबल हो और पाचन क्रिया के सम्बन्ध में वह कुछ भी न जानता हो। यह एक चित्रकार है। वह तुम्हें एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर, चित्र कला का अति उज्ज्वल रत्न देता है। फिर भी चित्रकार का

संसार का परम कुरूप मनुष्य होना सर्वथा सम्भव है। ऐसे भी लोग हैं जो घोर कुरूप होते हुए भी सुन्दर सत्यों का प्रचार करते हैं। सुकरात इसी तरह का एक मनुष्य था। सर फ्रांसिस बेकन हो गया है। न तो वह बड़ा नैतिक ही था, न चरित्र ही में बहुत बढ़ाचढ़ा था, फिर भी उसने संसार को "नोवम आरगेनम" नामक ग्रन्थ दिया और पहले पहल व्याप्तिवाद (आगमनात्मक तर्क शास्त्र) की शिक्षा दी। उसका तत्वज्ञान उत्कृष्ट था। किसी धर्म में इस लिये न विश्वास करो कि वह बड़े विख्यात व्यक्ति का चलाया हुआ है। सर आइज़ाक न्यूटन बड़ा प्रसिद्ध पुरुष है। फिर भी प्रकाश के सम्बन्ध में उसकी निर्गममीमांसा भ्रान्त है, शून्यवृद्धि का उसका तरीका लीबनिट्स के चलन पद्धति को नहीं पाता। किसी वस्तु को स्वीकार और किसी धर्म पर विश्वास उसके गुणों को समझ कर करो। स्वयं उसकी परीक्षा करो। उसकी जांच पड़ताल करो। बुद्ध, ईसा मोहम्मद, या कृष्ण को अपनी स्वाधीनता न सौंप दो। यदि बुद्ध ने वह शिक्षा दी थी, या ईसा ने यह शिक्षा दी थी, अथवा मोहम्मद ने कोई और ही शिक्षा दी थी तो वे उनके लिये बहुत अच्छी थीं, उनके समय दूसरे थे। उन्हों ने अपनी समस्याओं को हल किया था, उन्हों ने अपनी बुद्धियों से निर्णय किया था, उन्हों ने बड़ा काम किया। किन्तु तुम आज जी रहे हो, तुम्हें अपने लिये आप मामलों की जांच और आलोचना और निर्णय करना पड़ेगा। स्वतंत्र हो, अपने ही प्रकाश से हरेक वस्तु देखने को स्वतंत्र हो। यदि तुम्हारे पूर्वज किसी विशेष धर्म पर विश्वास करते थे, तो शायद उनके लिये उसी पर विश्वास करना बहुत उचित था, परन्तु तुम्हारी मुक्ति अब तुम्हारा अपना काम है, तुम्हारा उद्धार तुम्हारे

पूर्वजों का व्यवसाय नहीं । वे एक विशेष धर्म पर विश्वास करते थे, जिसने उनको बचाया हो या न बचाया हो परन्तु तुम्हें अपना मोक्ष सम्पादन करना है । जो कुछ तुम्हारे सामने आवे उसको उसी रूप में जांच करो, स्वयं उसकी परीक्षा करो, बिना अपनी स्वतंत्रता खोये हुए । तुम्हारे पूर्वजों को एकही खास धर्म बताया गया होगा, पर तुम्हारे सामने सब प्रकार के सत्य, सब प्रकार के धर्म, सब प्रकार के तत्त्वज्ञान, सब प्रकार के विज्ञान प्रतिपादित किये जा रहे हैं । यदि तुम्हारे पूर्वजों का धर्म तुम्हारा इस लिये है कि वह तुम्हारे सामने रक्खा गया है तो बुद्ध का धर्म भी तुम्हारे सामने रक्खा जाने के कारण तुम्हारा है, उसी तरह वेदान्त भी तुम्हारे सामने उपस्थित किया जाने के कारण तुम्हारा है ।

सत्य किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं है । सत्य ईसा की जायदाद नहीं है; उसका प्रचार हमें ईसके नाम में नहीं करना चाहिए । सत्य बुद्ध की सम्पत्ति नहीं है; उसका प्रचार हमें बुद्ध के नाम में नहीं करना चाहिए । वह मोहम्मद की भी सम्पत्ति नहीं है । वह कृष्ण अथवा किसी और पुरुष की जायदाद नहीं है । वह हरेक की सम्पत्ति है । यदि पहले किसी ने सूर्य की किरणों का सेवन किया अथवा घाम खाया है तो आज आप सूर्य-ताप में नहा सकते हैं । यदि एक मनुष्य चश्मे का ताजा पानी पीता है तो तुम भी वही ताजा पानी पी सकते हो । सब धर्मों के प्रति आपका यह भाव (अंदाज) होना चाहिए । किसी का भी दिल अपने पड़ोसियों के लौकिक ऐश्वर्यों को हटने में हिचकेगा । परन्तु क्या यह विचित्र बात नहीं है कि जब हमारे पड़ोसी बड़ी प्रसन्नता से अपने धार्मिक अथवा आध्यात्मिक कोष,

जो निर्विवाद रूप से लौकिक निधियों से बढ़ कर हैं, हमें देते हैं तो हर्षपूर्वक उन्हें ग्रहण करने के बदले हम उनके विरुद्ध डंडा लेकर खड़े होते हैं? तुम्हें वेदान्ती का दुर्नाम देने के इरादे से राम तुम्हारे पास वेदान्त नहीं लाया है। नहीं। इन सबको तुम ले लो, इसे पचा लो, इसे अपना लो, फिर चाहे इसे इसाइयत ही कहो। नाम हमारे लिये कुछ भी नहीं हैं। राम तुम्हारे पास एक ऐसा धर्म लाया है, जो केवल इंजील और अधिकांश पुराने धर्मग्रंथों ही में नहीं मिलता, बल्कि दर्शन शास्त्र और पदार्थ-विज्ञान के नये से नये ग्रंथों में भी मिलता है। राम तुम्हें एक ऐसे धर्म का उपदेश देने आया है, जो पर्थों में मिलता है, जो पत्तियों पर लिखा हुआ है, जो नालों द्वारा गुनगुनाया जाता है, जो पवन में डोल रहा है, जो तुम्हारी अपनी ही नसों और शिराओं में फड़क रहा है। यह वह धर्म है जिसका सम्पर्क तुम्हारे व्यवसाय और अन्तःकरण से है। यह वह धर्म है जिसके अभ्यास के लिये तुम्हें किसी खास गिर्जाघर में जाने की जरूरत नहीं। यह वह धर्म है जिसका तुम्हें अपने नित्य के जीवन में, अपने भोजनागार में, अपने अग्नि-कुंड के आसपास अभ्यास और व्यवहार करना है। सब कहीं तुम्हें इस धर्म का आचरण करना है। वेदान्त हम इसे न कहें, किसी दूसरे ही नाम से हम इसे पुकार सकते हैं। वेदान्त शब्द का अर्थ केवल मूल सत्य है। सत्य तुम्हारा अपना है, राम का अधिकार उसपर तुम से अधिक नहीं है, हिन्दू का स्वामित्व उस पर तुम से अधिक नहीं है। वह किसी की मिलकियत नहीं; हरेक चीज और प्रत्येक प्राणी उसका है।

अब हम यह विचार करेंगे कि इस जीवन में वेदान्त हमारा

मार्ग सरल और हमारे काम अधिक रुचिकर क्यों कर बनाता है। आज हम व्यावहारिक वेदान्त, दूसरे शब्दों में सफलता की कुंजी पर कहेंगे। वेदान्त का आचरण करना ही सफलता की कुंजी है। हरेक विज्ञान की उसके अनुरूप एक कला भी होती है। और आज हम वेदान्त के उसी स्वरूप को लेंगे जो विज्ञान की अपेक्षा कला अधिक है, अर्थात् अमली वेदान्त।

कुछ लोग कहते हैं कि वेदान्त निराशावाद की शिक्षा देता है, वेदान्त नाउम्मेदी, आलस्य, सुस्ती सिखाता है। राम की इन लोगों से प्रार्थना है कि वे अपना न्यायशास्त्र अपने ही पास रक्खें और दूसरों के हाथ अपनी बुद्धि न बेचें। वे अपनी बुद्धि अपने ही पास रक्खें और देखें कि वेदान्त की शिक्षा जीवन, शक्ति, उद्योग, सफलता का कारण होती है। या किसी और चीज की। यह न पूछो कि पूर्व-भारत का निवासी इसका व्यवहार करता है या नहीं। राम साफ २ कहता है कि यह केवल भारतीयों की सम्पत्ति नहीं है, यह हरेक की सम्पत्ति है। यह आपका निजी जन्मस्वत्व है। अमेरिकावासी अपने व्यावारिक जीवन में इसका अधिक आचरण करते हैं और इसी से उन्हें उस विभाग में सफलता होती है। भारतीय उसी मात्रा में इसका व्यवहार नहीं करते और भौतिक दृष्टि से वे इसी लिये पिछड़े हुए हैं।

राम विहित वेदान्त आप के पास नहीं लाया है, वह लाया है, प्रकृति के मूल-स्रोतों से निकला हुआ असली वेदान्त। अपनी बुद्धि और तर्क का (आज के) विषय पर प्रयोग करो और आप देखेंगे कि वेदान्त कैसा अपूर्व है और हरेक विभाग में वह हमें क्यों कर सफलता दिलाता है, क्यों

कर हरेक को अपनी इच्छा के विरुद्ध वेदान्त की रेखा पर चलना और उसके आदेशों का पालन करना पड़ेगा।

सफलता का रहस्य बहुरूप है। रहस्य के दृश्य हैं। हम एक २ करके इन सिद्धान्तों को लेंगे और हिन्दू धर्म-ग्रन्थों की व्याख्या के अनुसार वेदान्त से उनके सम्बन्ध का पता लगावेंगे।

सफलता का पहला सिद्धान्तः—कार्य।

यह खुला हुआ भेद है कि सफलता की कुंजी कार्य आक्रमण, साग्रह प्रयोग है।

"चोट लगाओ, चोट लगाओ"! सफलता का पहला सिद्धान्त है। काम बिना तुम कदापि सफल नहीं हो सकते। "जीवन-संग्राम" में सुस्त आदमी का नष्ट होजाना अटल है, वह नहीं जी सकता, उसे मरनाही होगा। यहां पर एक सवाल उठता है जो अति बहुधा वेदान्त के विरुद्ध उठाया जाता है। स्वयं या आत्मा की वेदान्त प्रतिपादित विशुद्ध, निर्विकार, भावमय प्रकृति से अविरत श्रम की संगति कैसे आप युक्त ठहरा सकते हैं? वैराग्य या त्याग का उपदेश देकर और परमात्मा की शान्ति और विश्राम की प्राप्ति को अपने उपदेश का अंग बना कर क्या वेदान्त सुस्त और अकर्मण्य नहीं बनाता है? कार्य या त्याग की प्रकृति का भयङ्कर अज्ञान ही इस आपत्ति का कारण है।

काम क्या चीज है? वेदान्त के अनुसार अतीव कार्य ही विश्राम है। "काम विश्राम है" यह एक विस्मयकर कथन है, परस्पर विरोधी बयान है। सच्चा कार्य मात्र विश्राम है। यही वेदान्त सिखाता है। सब से बड़े कामकाजी पर उस समय ध्यान दो, जब वह अपने काम की चोटी पर हो, जब

वह खूब काम कर रहा हो, दूसरों की दृष्टि से वह बड़े प्रयत्न में लगा हुआ है, परन्तु उसी के दृष्टि बिन्दु से उसे जाँचिये, वह कर्त्ता ही नहीं है; जैसे दूर से देखने वालों का दृष्टि में इन्द्रधनुष में अनेक सुन्दर रंग होते हैं परन्तु मौक़े की जांच से मालूम हो जाता है कि उसमें किसी तरह का कोई भी रंग नहीं है। समर में जिस समय नायक, नेपोलियन या वाशिंगटन कोई भी कहलो, लड़ रहा हो, लड़ रहा हो, अपने जौहर दिखला रहा हो, तब उस पर ध्यान दीजिये। शरीर मानों आप से आप यंत्रवत् काम कर रहा है; मन इस दर्जे तक काम में लिप्त है कि "मैं काम कर रहा हूँ" का भाव बिलकुल चला गया है, सुखोपभोगी क्षुद्र अहं बिलकुल लुप्त है, वाह वाही का भूखा तुच्छ स्वयं गैरहाजिर है। यह निरन्तर कार्य अनजाने ही आप को योग की सर्वोपरि दशा में पहुँचाता है।

वेदान्त चाहता है कि अतीव कार्य के द्वारा आप क्षुद्र स्वयं, तुच्छ अहं के ऊपर उठें। शरीर और चित्त को निरन्तर इस दर्जे तक काम में लगा रखना चाहिये कि परिश्रम का बोध ही न हो। रुचि तभी अभिनिवेश में होता है जब वह क्षुद्र स्वयं या अहं के विचार से ऊपर उठता है, जब "मैं कविता कर रहा हूँ" का उसे ध्यान नहीं रहता। किसी भी ऐसे व्यक्ति से पूछो, जिसे गणित के कठिन प्रश्नों का हल करने का अनुभव प्राप्त हुआ है, वह तुम्हें बतावेगा कि तभी कठिनाइयां दूर और समस्याएं हल होती हैं जब "मैं यह कर रहा हूँ" का विचार बिलकुल दूर होजाता है। और क्षुद्र अहं या तुच्छ स्वयं से जितनाही अधिक ऊँचा कोई मनुष्य उठ सकता है उतनाही अधिक गौरवान्वित कार्य

उसके द्वारा होता है।

इस प्रकार, वेदान्त उत्सुक कार्य के योग से क्षुद्र अहं से ऊपर उठने और वास्तविक अवर्णनीय सिद्धान्त में, जो वेदान्त के अनुसार असली स्वयं अथवा आत्मा या ईश्वर है, सर्वथा लीन होजाने की शिक्षा देता है। जब कोई विचार शील, तत्त्वज्ञानी, कवि, वैज्ञानिक या कर्मी समाधि या योग की अवस्था से अपनी एकता स्थापित करता है और तल्लीनता या वैराग्य की इतनी ऊँची अवस्था में प्राप्त होजाता है कि व्यक्तित्व का कोई लेश ही उस में नहीं रह जाता तथा वेदान्त की कार्यतः प्राप्ति हो जाती है तब और तभी केवल परमेश्वर नाद-गुरू उस (तत्त्वज्ञानी या कवि इत्यादि) के शरीर और चित्त के बाजे या यंत्र को अपने हाथ में लेता है और उससे महान अलाप, मधुर ध्वनियां और अनुपम लच्चे स्वर निकालता है। लोग कहते हैं, "अरे! वह आवेश में है!" परन्तु उस में कोई वह या मुझे नहीं है, उसके स्थिति-विन्दु से उस में कर्म करने या भोग करने के लेश का भी पता नहीं है। असली जीवन में यही वेदान्त की प्राप्ति या अनुभूति है। इस प्रकार वेदान्त के वेजाने व्यवहार से सफलता मात्र बहती है।

वेदान्तिक योग की प्राप्ति के लिये आप के जंगलों में जाने और असाधारण कार्यों का अभ्यास करने की कोई जरूरत नहीं है। जब तुम कर्म में डूबे हुए हो, जब काम में लीन हो तब तुम योग के जनक हो, स्वयं शिव हो। वेदान्त के अनुसार शरीर तुम्हारा आत्मा नहीं है, और क्या आप यह नहीं देखते कि केवल तभी आप उच्च गौरव प्राप्त करते और अत्युत्तम काम दिखाते हैं जब असली रूप से इस सत्य का

आचरण करते हैं तथा अतीव प्रयत्न के प्रभाव से शरीर और मन का आपके लिये अभाव हो जाता है।

दीपक या प्रकाश से समझाया जायगा कि काम क्या वस्तु है। एक गिलास या तेल का दीपक ले लीजिये। वाह, रोशनी कैसी उज्वल, चमकदार, प्रभापूर्ण, उत्तम और भड़कीली है! दीपक को गौरव और प्रभा काहे से मिलती है? निरन्तर कार्य के द्वारा अहं का अन्त करने से। दीपक अपनी बत्ती और तेल को बचाने की चेष्टा करते ही अन्धकारमय असफलता का पुंज, सफलता से सर्वथा शून्य होजायगा। सफलता पाने के लिये दीपक को जलना चाहिये, अपनी बत्ती और तेल को वह नहीं बचा सकता। वेदान्त की यही शिक्षा है। यदि आप सफलता चाहते हैं, यदि आप समृद्धि चाहते हैं तो अपने कामों के द्वारा, अपनी ही दैनिक जीवन चर्या से अपने ही शरीर और शिराओं की आहुति दीजिये, उपयोग की अग्नि में उनको जलाइये। आप को उन्हें काम में लाना चाहिये। आप को अपने शरीर और चित्त का दाह करना होगा, उन्हें बलती हुई दशा में रखना पड़ेगा। अपने शरीर और चित्त को सूली पर चढ़ाओ, काम करो, और तब तुम से प्रकाश फैलेगा।

सभी काम अपनी बत्ती तथा तेल को जलाने के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में, सभी काम अपने शरीर और चित्त को माया या मिथ्या बनाने अथवा आप की अपनी ही चेतना या बोध के स्थिति-बिन्दु से कार्यतः उन्हें शून्य या व्यर्थ कर देने के सिवाय और कुछ नहीं है। उन (शरीर आदि) से ऊपर उठना ही काम है।

सभी सत्य काम तभी पूर्ण होता है जब हम शरीर

आदि से ऊपर उठते हैं। भारत के सम्राट अकबर के दरबार में एक बार दो वीर हिन्दू भाई पहुँचे। उन्होंने बादशाह से नौकरी पाने की प्रार्थना की। सम्राट ने उनसे उनकी योग्यता पूछी। उन्हों ने कहा हम शूर-वीर हैं। बादशाह ने उनसे शूरता का प्रमाण देने को कहा। अकबर के दरबार में वे आमने सामने खड़े हुए। उनके तीखी नोकवाले, लपलपाते हुए खांड़े चमक गये। दोनों ने अपने अपने खंजरों की तीक्ष्ण नोक अपने भाई के छाते में अड़ाई। मुस्कुराते हुए, प्रसन्न-चित्त वे एक दूसरे की ओर बढ़े। उनके हाथ दृढ़ थे, खंजर शरीरों में घुसते जाते थे, किन्तु शान्तिपूर्वक और बिना सहमे एक दूसरे के पास पहुँच गया। न हिचक थी, न डर था। उनके शरीर रक्त बहाते हुए ज़मीन पर गिरे और मिले, और उनकी आत्माएं वैकुण्ठ में मिलीं। उनकी वीरता का बड़ा ही विलक्षण प्रमाण बादशाह को मिल गया। यह इस बात का उदाहरण है कि सच्चा कार्य तभी पूरा होता है जब स्वयं का निरूपक कार्यकर्त्ता अपना बलिदान कर देता है। डंक मारते समय भिड़ों को अपने प्राणों की प्रतिष्ठा डंक में ही कर लेनी पड़ती है। प्लेटो कहता है, "जो मनुष्य अपना आप ही स्वामी (जितेन्द्रिय या आत्म-जयी) है उसका काव्य के द्वार पर खटखटाना व्यर्थ है।"

इस प्रकार समस्त वैभव और सफलता की प्राप्ति जीवन-चर्या में वेदान्त को चरितार्थ करने से होती है। सांसारिक मनुष्य के लिये निरन्तर कार्य, निरन्तर परिश्रम ही सब से बड़ा योग है। जब आप अपने लिये कुछ भी काम नहीं करते तो संसार के लिये बहुत बहुत बड़े कामकाजी होते हैं।

पुनः, किस दशा और रंगत में सफल काम हमारे लिये

स्वाभाविक होजाता है? "काम करो, काम करो" यह कहना तो बड़ा सहल है परन्तु काम करना बड़ा कठिन है। हरेक सब से बड़ा चित्रकार बनना चाहता है, हरेक सब से बड़ा गवैया बनना चाहता है, पर हरेक जो कुछ चाहता है वही नहीं बन जाता। अकर्मण्यता की प्रवृत्ति आप में क्यों कर होती है? परिश्रम में आप को मजा क्यों मिलता है? क्या आप को यह अनुभव नहीं हुआ है कि प्रायः काम करने की इच्छा होने पर भी आप काम नहीं कर सके? क्या आप के ध्यान में यह नहीं आया है कि कोई एक उच्चतर सत्ता है जो आप की कार्य-क्षमता का शासन करती है? कितनी बार ऐसा नहीं होता कि मनुष्य सबेरे जाग कर अपने को एक अद्भुत अवर्णनीय अवस्था में, प्रकृति से पूर्ण एकता में पाता है? ऐसी अवस्था में वह अपनी लेखनी उठाता है और उस की लेखनी से अत्युत्तम काव्य या तत्त्वज्ञान की धारा बह चलती है। एक चित्रकार सुन्दर चित्र खींचने की चेष्टा करता है, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उससे नहीं बन पड़ता। किसी दिन प्रातःकाल जागने पर वह अपने को मानों आवेश में पाता है और तब बड़े ही कौशलपूर्ण चित्र खींचता है। है यह बात कि नहीं?

इस प्रकार हमें पता चलता है कि कोई एक उच्चतर वस्तु है जो आप की समस्त कार्य-कारिणी शक्तियों को अत्यन्त उपयोगी बनाती है। यदि आप उसे उच्चतर मनोवृत्ति से लाभ उठावें तो आप सदा अपने को अपनी उत्कृष्ट दशा में रख सकते हैं और आपके हाथ से निकला हुआ काम सर्वांगपूर्ण और सुन्दर होगा। उस उच्चतर मनोवृत्ति या उस उच्चतर रहस्य को वेदान्त आपके सामने रखता

है। अखिल विश्व से पूर्ण ऐक्य-स्थापित करने, परमेश्वर के स्वर में स्वर मिलाने, कार्यतः भागवत जीवन व्यतीत करने, और क्षुद्र अहं या स्वार्थपूर्ण आकांक्षाओं के ऊपर उठने के सिवाय यह (उच्चतर मनोवृत्ति या उच्चतर रहस्य) और कुछ नहीं है। इस तरह आप अपने अन्तर्गत सम्पूर्ण शक्ति या प्रकाश के रहस्य से लाभ उठा कर कार्य को विचित्र बना सकते हैं।

कोई कलाकुशल या चित्रकार सड़क पर जाता है और वहां अनेक चेहरे देखता है। एक व्यक्ति के नेत्र उसको लुभा लेते हैं, उसके चित्त-भण्डार में अज्ञात भाव से उनका संचय हो जाता है। वह दूसरे मनुष्य को मिलता है और उसकी चिबुक [ठोढ़ी] उसे मनोहर जँचती है। वह इस ठोढ़ी को अपने चित्त में जमा कर लेता है। नेत्र एक मनुष्य के लिये गये और ठोढ़ी दूसरे व्यक्ति की हरी गई। तीसरा आदमी उसकी दूकान पर तसवीर खरीदने आता है। चित्र उसके हाथ बेच दिया गया, ग्राहक चित्र लेकर चला गया किन्तु यह नहीं जानता कि वह अपने केश शिल्पी के चित्त में पीछे छोड़ आया है। इसके बाद एक और आदमी आता है जो चित्रकार से कुछ काम कराना चाहता है। चित्रकार उसका वह काम करता है और उसके मार्के के कान झपट लेता है। और इस तरह सूक्ष्म रूप से चित्रकार का चित्त काम में लगा हुआ है। विभिन्न पुरुषों के नेत्र, ठोढ़ी, नाक आदि अपने काम में लाते समय चित्रकार को यह विचार नहीं रहता कि वह इन अङ्गों को ले रहा है किन्तु सूक्ष्म रूप से बेजाने यह काम होता रहता है। कुछ दिनों बाद चित्रकार अपनी कलाशाला में (चित्र खींचने के लिये) पट लेकर

बैठता है। वह एक अद्भुत चित्र खींचने की चेष्टा करता है। परिणाम में एक मनुष्य के मृगलोचन, दूसरे की सुन्दर नासिका, तीसरे के मनोहर केशों का एकही चित्र में सम्मिलन हो जाता है और चित्रशिल्पी एक अत्यन्त रमणीय वस्तु तैयार कर देता है; ऐसा चित्र प्रस्तुत कर देता है जो अपने सब मूल उदाहरणों से बढ़कर है। चित्र-कला का यह सुन्दर काम कैसे हुआ था? क्या यह कार्य व्यक्ति विशेष का किया हुआ था? नहीं, यह कार्य भावात्मक था। "मैं कर रहा हूँ" की चित्तवृत्ति से परे, स्वार्थपरता के दूषण और अहं-भाव से मुक्त दशा में निरन्तर रहने से यह सब कार्य सम्पन्न हुआ था। विद्वेष या तृष्णा से जिसे प्रायः भ्रान्ति-वश प्रेम कहा जाता है, शिल्पकार के कलुषित होते ही उसके चित्त का पहरेदार खिंच जाता है, काम करने के क्रम या परम्परा में फिर वह नहीं रह जाता, वह अव्यवस्थित हो जाता है, वह अस्तव्यस्त होजाता है। उसकी मनोवृत्ति की भावात्मकता जाती रही, वह स्वार्थपरता से आकृष्ट हुआ है, प्रशान्त अवस्था लुप्त हो गई। सर्व से हमारा संसर्ग बनाये रखने वाली वेदान्तिक भावना का स्थान सीमाबद्ध-कारी प्रेम या घृणा ने ले लिया है और चित्रकार का मन अब इस या उस मनुष्य की आकृति का सार ले लेने का सूक्ष्म या भावात्मक कार्य नहीं कर सकता। असली वेदान्त चला गया और साथ ही उसके कौशल के अनुपम कार्य करने की परम शक्ति भी चलदी।

.....इस प्रकार आप देखते हैं कि आपका कार्य जितना ही अधिक भावात्मक होता है और "मैं कर रहा हूँ" से जितना ही अधिक आप ऊपर उठते हैं, स्वामित्व अथवा सर्वो-

धिकार स्वरक्षित रखने की भावना की जितनाही अधिक आप त्याग करते हैं और संचय करने, कृपापात्र बनने की वृत्ति को जितनाही पीछे छोड़ देते हैं, अपने अवास्तविक (मिथ्या) प्रगट स्वयं का जितनाही अधिक आप निग्रह करते हैं आपका काम उतनाही अधिक अच्छा होता है। वेदान्त चाहता है कि संग या फलप्राप्ति की इच्छा को त्याग कर) आप काम ही के लिये काम करें। कार्य को सफल बनाना हो तो आप परिणाम का विचार त्याग दें, फल या अन्त की चिन्ता न करें। साधन और फल को एक साथ कर दो, कार्य ही को परिणाम समझो। वेदान्त चाहता है कि आप का आन्तरिक स्वयं निश्चिन्त रहे। अन्तरात्मा तो शान्त रहे और शरीर लगातार काम करता रहे। गति-विद्या के नियमों का पालन करता हुआ शरीर काम में लगा रहे और अन्तरात्मा सदैव सब अवस्थाओं में (स्थिर) शान्त रहे। हमारी स्वार्थमय बेचैनी ही हमारे सब काम को बिगाड़ देती है। कार्य से संलग्न शान्ति या निर्वाण के लिये काम करो।

सफलता का दूसरा सिद्धान्तः—स्वार्थरहित बलिदान।

एक सरोवर और एक सरिता में झगड़ा हुआ। तालाब ने नदी से यह कहाः—"ऐ नदी. तू बड़ी मूर्ख है कि अपना सब जल और सम्पूर्ण वैभव समुद्र को दे देती है,समुद्र पर अपना जल और ऐश्वर्य मत लुटा। महोदधि को इसकी जरूरत नहीं, वह अकृतज्ञ है। तू अपनी सकल सञ्चित निधियां उसमें भले ही भरती जाय परन्तु वह उतनाही नमकीन, उतनाही खारा बना रहेगा जितना आज है, उसका खारी पानी न बदलेगा। 'सुअर के सामने मोती मत फेंक'। अपनी सब निधियां अपने ही पास रख।" यह लौकिक बुद्धिमानी

थी। अन्त पर विचार करने, फल की चिन्ता करने और परिणाम पर ध्यान देने को नदी से कहा गया था। किन्तु नदी वेदान्तिनी थी। सांसारिक बुद्धिमानी की यह बात सुन कर नदी ने उत्तर दिया, "जी नहीं परिणाम और फल मेरे लिये कुछ नहीं हैं, सफलता और असफलता मेरे लिये तुच्छ हैं, मैं काम करूंगी क्योंकि मुझे काम प्यारा है, काम के लिये ही मैं काम करूँगी। काम ही मेरा ध्येय है, कर्मशीलता ही मेरा जीवन है। उद्योग ही मेरा प्राण, मेरी वास्तविक आत्मा है। मुझे काम करना ही होगा"। नदी काम करती रही, समुद्र में लाखों घड़ा पर लाखों घड़े जल डालती रही। कंजूस कमखर्च तालाब तीन चार महीने में सूख गया। वह दुर्गंधियुक्त, निश्चेष्ट, सड़े हुए कूड़े से भरपूर हो गया। किन्तु नदी ताजी और विशुद्ध बनी रही, उसके अमर सोते नहीं सूखे। नदी के मूल-सोतों की पुरौती करने के लिये चुपचाप और धीरे धीरे समुद्र-तल से जल लिया गया। मेघमालाएँ और अयन (मौसमी) वायु धीरे धीरे तथा चुपचाप समुद्र से जल ले गई और नदी के मूल को सदा ताजा रक्खा।

ठीक इसी तरह वेदान्त चाहता है कि आप सरोवर की सत्यनाशी नीति को न बर्तें। क्षुद्र, स्वार्थान्ध सरोवर ही परिणाम की चिन्ता करता है, सोचता है कि "मेरा और मेरे काम का क्या परिणाम होगा"। काम के लिये तुम काम करो, तुम्हें काम करना ही चाहिये। काम ही में तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये। और इस तरह वेदान्त तुम्हें व्याकुलता और संताप देनेवाली कामनाओं से मुक्त कर देता है। वेदान्तप्रचारित इच्छाओं से स्वाधीनता का यह अर्थ है।

परिणामों के लिये व्याकुल न हो. लोगों से कोई आशा न रक्खो, अपने काम की कटु या अनुकूल आलोचना के लिये हैरान न हो। जो कुछ तुम कर रहे हो वह अंगीकृत होगा या नहीं, इस की चिन्ता न करो, इसका बिलकुल विचार ही न करो। काम को काम ही के लिये करो। इस प्रकार तुम्हें अपने को कामना से मुक्त करना होगा। तुम्हें काम से मुक्त होना नहीं है, तुम्हें मुक्त होना है उत्सुकता की बेचैनी से इस तरह तुम्हारा काम कितना महान हो जाता है। सब प्रकार की व्याकुल करने वाली वासनाओं और प्रलोभनों का सब से अच्छा और प्रभावशाली उपचार काम है। किंतु यह तो केवल निषेधात्मक [दोष हटाने वाला] गुण हुआ। सत्य-व्रत कार्य के साथ जो साक्षात सुख जुड़ा हुआ है वह है मुक्ति का एक कण, बेजाने आत्म-अनुभव। वह तुम्हें विशुद्ध, निष्कलंक, और परमेश्वर से अभिन्न रखता है। यही आनन्द-कार्य का सर्वोच्च और अटल इनाम है। हृदय की स्वार्थमय लालसाओं को पूरा करने के अभिप्राय से काम करके इस स्वास्थ्यकर स्वर्गीय निधि को भ्रष्ट न करो। मलिन आकांक्षाएँ और तुच्छ उत्सुकताएँ हमारी उन्नति को आगे बढ़ाने के बदले पछेल देती हैं। बाहरी और घनीभूत [जमे हुए] प्रलोभन हमारी परिश्रम करने की शक्ति के लिये सहायक होने के बदले हानिकर हैं। जीजान से किये जाने वाले काम के साथ जो तात्कालिक आनन्द लगा हुआ है उससे बढ़कर सुख-दायक और स्वास्थ्यकर कोई पुरस्कार या प्रशंसा नहीं हो सकती। तो फिर काम में जो वैराग्य, धर्म, या उपासना निहित है उसे प्राप्त करने के लिये काम करो, उस से मिलने वाले बच्चों के खिलौनों के लिये नहीं। किसी तरह की जिम्मेदारी न समझो, कोई इनाम न मांगो।

"अभी 'यहां" तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये। लोग कहते हैं, "पहले योग्य बनो तब इच्छा करो"। वेदान्त कहता है, "केवल योग्य बनो, इच्छा करने की कोई जरूरत नहीं"। "जो पत्थर दीवार के काबिल है वह सड़क पर कभी न मिलेगा"। यदि तुम में पात्रता है तो एक अनिवार्य दैवी नियम से सब चीज तुम्हारे पास आ जायगी। यदि कोई दीपक जल रहा है तो वह जलता भर रहे, पतिंगों को बुला भेजने की उसे कोई जरूरत नहीं, पतिंगे अपनी इच्छा से ही दीपक को आ घेरेंगे। जहां कहीं ताज़ा चश्मा है लोग स्वयं वहां पहुँच जायगे, चश्मे को लोगों की दमड़ी भर भी परवाह करने की जरूरत नहीं। जब चन्द्रोदय होगा तो लोग आपही चाँदनी का आनन्द लूटने के लिये निकल आवेंगे। चढ़ चलो! चढ़ चलो! चोट लगाओ! चोट लगाओ! शरीर की असारता और सच्चे स्वयं की परम वास्तविकता का अनुभव करने के लिये काम करो। इस तरह पर प्रगट कर्मशीलता की चोटी पर तुम्हें निर्वाण और कैवल्य का स्वाद मिलेगा। और इस तरह पर अपने व्यक्तित्व तथा अहंभाव को श्रम की सूली पर जब तुम चढ़ा चुके होगे तब सफलता तुम्हें ढूंढ़ेगी और आकर प्रशंसा करने वाले लोगों की कमी न होगी। ईसा जब तक जीते थे लोगों ने उन्हें नहीं माना, पूजे जाने के पहले सूली पर चढ़ना उनका जरूरी था धूल में लोटाया हुआ सत्य फिर उठेगा। अपने रंग रूप को बिना बिगाड़े कोई बीज उगने और वृद्धि करने में समर्थ नहीं हो सकता। इस तरह पर सफलता के लिये दूसरी आवश्यकता है बलिदान की, क्षुद्र स्वयं को सूली पर चढ़ाने की, वैराग्य की। "वैराग्य" शब्द का अनर्थ न करना। "वैराग्य" का अर्थ फ़क़ीरी नहीं है।

हरेक आदमी सफेद, ज्योतिमान, चमकदार, चटकीला

होना चाहता है। आप क्यों कर गौरवशाली हो सकते हैं? कुछ पदार्थ सफेद क्यों हैं? सफेद पदार्थों की ओर देखिये। उनमें इतनी सफेदी कहाँ से आई? विज्ञान आपको बतलाता है कि सफेदी की कुंजी आत्मत्याग है, और कुछ नहीं। सूर्यकिरणों के सातों रंग विविध पदार्थों से टकराते या उनपर गिरते हैं। कुछ पदार्थ तो इनमें से अधिकांश को अपने में लीन कर लेते और रख लेते हैं और केवल एक को फिर बाहर निकालते हैं। ऐसे पदार्थ सिर्फ एक उसी रंग के कहे जाते हैं जिसे वे लौटाते या नहीं ग्रहण करते हैं। तुम उस वस्त्र को गुलाबी रंग का कहते हो परन्तु यही गुलाबी रंग उस वस्त्र का नहीं है। जो रंग उसने अपना लिये हैं और वास्तव में उसमें उन रंगों का तुम उसे (वस्त्र को) नहीं कहते। कैसी विचित्र बात है। काले पदार्थ सूर्य-किरणों के सब रंग पचा जाते हैं। वे कोई रंग बाहर नहीं निकालते, वे कुछ नहीं त्यागते, वे कुछ नहीं लौटाते। इसी से वे काले हैं, अंधकारमय हैं। सफेद पदार्थ कुछ नहीं आत्मसात करते, किसी चीज को नहीं अपना बनाते, वे सर्वस्व त्याग करते हैं। वे स्वार्थपूर्ण अधिकार रखना नहीं चाहते। स्वामित्व की भावना उनमें नहीं है, और इसी से वे श्वेत हैं, उज्ज्वल हैं, चमकीले हैं, प्रभापूर्ण हैं।

इसी तरह यदि आप गौरवान्वित और समृद्धिशाली होना चाहते हैं तो आपको अपने अन्तःकरण को स्वार्थपूर्ण और स्वामित्व की भावना से ऊपर उठाना पड़ेगा। तुम्हें उसके ऊपर उठना चाहिये। हमेशा दाता बनो, कार्यकर्ता बनो। अपने दिल को मँगतापन और आशा में कभी न रक्खो। एकाधिकार करने की आदत से छूटो। तुम्हारे

फेफड़ों में जो हवा है उस पर एक मात्र तुम्हारा ही दावा क्यों हो? वह हवा हरेक व्यक्ति की सम्पत्ति है। इसके विपरीत, अपने फेफड़ों की वायु की अल्प मात्रा का उपयोग करना जब आप छोड़ देते हैं तब आप समस्त वायुमण्डल का अधिकारी अपने को पाते हैं, आपके साधन असीम हो जाते हैं। विश्व की प्राणप्रद वायु को पान करो। अभिमानी मत बनो, दर्प न करो। कभी मत समझो कि कोई वस्तु तुम्हारे क्षुद्र स्वयं की है। वह ईश्वर की, तुम्हारी वास्तविक आत्मा की है। सर आइज़ाक न्यूटन का उदाहरण ले लो। संसार की दृष्टि में इतना प्रभावान, उज्ज्वल, गौरवशाली वह क्यों कर हुआ? जिस भावना से उसने अपने जीवन में काम किया था वह उसके मरने के समय मालूम हुई थी। संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष होने के लिये बधाई पाने या प्रशंसित होने पर उसने कहा, "नहीं जी, यह बुद्धि अथवा मेरा यह क्षुद्र व्यक्तित्व ज्ञान के विराट, विशाल समुद्र के तट पर विल्लौर बटोरनेवाले छोटे बच्चे के तुल्य है"। वह अब भी बालू पर पड़ा हुआ विल्लौर बटोर रहा था। इस प्रकार हमें उस विनीत आत्मा के दर्शन होते हैं जो किसी वस्तु पर भी अपना अधिकार नहीं बताती, जो कोई चीज भी अपनी नहीं बनाती, जो क्षुद्र स्वयं को नहीं बढ़ाती, जो उसी भावना से कार्य करती है जिस भावना से आपकी सामर्थ्य और आप की कार्यकारिणी शक्तियां परमोत्कर्ष को प्राप्त होती हैं। और वेदान्त की भावना का यही मुख्य लक्षण है।

तुम अभिलाषाओं को रखते हो, सब प्रकार की कामनाएँ तुम में हैं, और तुम चाहते हो कि तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हों। किन्तु इच्छाओं की पूर्त्ति की कुंजी जानो। खिड़की के परदे

को जब हम चढ़ाना चाहते हैं तब उसे नीचे की ओर खींच कर छोड़ देते हैं और खिड़की का परदा चढ़ जाता है। तुम्हारी समस्त कामनाओं की पूर्त्ति के रहस्य का यह दृष्टान्त है। जब तुम इच्छा को छोड़ देते हो तभी वह फलीभूत होती है। तीर कैसे छोड़े जाते हैं? हम धनुष को झुकाते हैं। जब तक हम धनुष की तांत को खींचते रहते हैं तब तक बाण शत्रु तक नहीं पहुँचता। तांत को तुम चाहे जितना तानो, बाण तुम्हारे ही पास रहेगा। जब तुम तांत छोड़ देते हो तभी तुम्हारे शत्रु की छाती छेदने के लिये बन्नाहटे के साथ बान छूटता है। इसी तरह से जब तक तुम अपनी कामना को ताने रहोगे, अथवा इच्छा, अभिलाषा, कामना करते रहोगे, उत्सुक रहोगे, तब तक वह दूसरे पक्ष के अन्तःकरण तक न पहुँचेगी। जब तुम उसे छोड़ देते हो तभी वह इच्छित वस्तु की आत्मा में प्रवेश करती है। "जब तुम मुझे छोड़ देते और खो देते हो, केवल तभी तुम मुझे अपने पास पाते हो"। जब तुम अपने को उस विचित्र, अवर्णनीय भाव में डालते हो जो हम तुम दोनों से उच्चतर है, केवल तभी तुम मुझे पाते हो। वेदान्त यही आपको बताता है।

दो साधु साथ यात्रा कर रहे थे। उनमें से एक ने व्यवहारतः सञ्चय-वृत्ति को कायम रक्खा। दूसरा वैरागी था। नदी-तट पर पहुँचने तक वे ग्रहण और त्याग के विषय पर तर्क-वितर्क करते रहे। कुछ रात जा चुकी थी। त्याग का उपदेश देनेवाले मनुष्य के पास कौड़ी-पैसा न था, दूसरे के पास था। त्यागी पुरुष ने कहा, "शरीर की हमें क्या चिन्ता है, मल्लाह को देने को हमारे पास रुपया नहीं है, ईश्वर का नाम भजते हुए इसी तट पर हम रात काट देंगे"। रुपये

वाले साधु ने उत्तर दिया, " यदि हम नदी के इसी पार रहे तो कोई गांव, डेरा, झोपड़ी या साथी हमें न नसीब होंगे और भेड़िये हमें खा जायेंगे, सांप डस लेंगे, सर्दी ठिठुरा देगी। हमें उस पार उतर चलना चाहिये। केवट को उतराई देने के लिये मेरे पास पैसा है। उस पार एक गांव है, वहां हम आराम से रहेंगे "। नाववाला नाव लाया और दोनों को उस पार उतार दिया। जिस मनुष्य ने उतराई दी थी वह रात को त्यागी मनुष्य से बिगड़ा। " पैसा रखने का फायदा तुम्हें समझ पड़ा या नहीं? मेरे पास पैसा होने से दो जानें बच गईं। आज से तुम कभी त्याग का उपदेश न देना। तुम्हारी तरह मैं भी त्यागी होता तो हम दोनों भूखे मर जाते या ठिठुर जाते और नदी के उस तट पर मर जाते"। त्यागी मनुष्य ने उत्तर दिया, " यदि तुमने रुपया अपने पास रक्खा होता, यदि तुम उससे किनारा न कसते, यदि तुमने इसे केवट को न दे दिया होता, तो हम उस किनारे पर मर जाते। इस प्रकार रुपये के त्याग या दान से ही हमारी रक्षा हुई "। "इस के सिवाय," त्यागी पुरुष ने कहा, " जब मैंने अपनी जेब में बिलकुल रुपया नहीं रक्खा था, तभी तुम्हारी जेब मेरी जेब हो गई। मेरे विश्वास की बदौलत उस (तुम्हारी) टेंट में रुपया था। मुझे कभी क्लेश नहीं होता। जब कभी मुझे आवश्यकता होती है वह पूरी हो जाती है"। इस कहानी से सूचित होता है कि जब तक तुम अपनी इच्छाओं को अपनी जेब में रखते हो तब तक तुम्हारे लिये चैन या रक्षा नहीं है। अपनी इच्छाओं को त्यागो, उनसे ऊपर उठो, और तुम्हें दोहरी शान्ति तुरन्त चैन और अन्त में इच्छाओं की पूर्ति—प्राप्त होगी। याद रक्खो कि तुम्हारी कामनाएँ तभी पूरी होंगी जब तुम उनसे ऊपर उठकर परम

सार में पहुंचोगे। जान कर या बेजाने जब तुम अपने को परमेश्वर में लीन कर दोगे तभी और केवल तभी तुम्हारी अभिलाषाओं की पूर्त्ति का उपयुक्त समय होगा।

सफलता का तीसरा सिद्धान्तः—प्रेम।

साफल्य का तीसरा सिद्धान्त है प्रेम, विश्व से संगति, परिस्थिति के योग्य आचरण। प्रेम का क्या अर्थ है? प्रेम का अर्थ है अमली तौर पर अपने पड़ोसियों और सभी संसर्ग में आने वालों से अपनी एकता और अभिन्नता का अनुभव करना। यदि आप दुकानदार हैं तो जब तक आप अपने ग्राहकों के स्वार्थ और अपने स्वार्थ को एक न समझेंगे तब तक आप कोई उन्नति न करेंगे, आप के काम को हानि पहुंचती रहेगी। यदि हाथ स्वार्थपरतावश शरीर के अन्य अंगों से अपनी भिन्नता प्रतिपादित करने में इस प्रकार तर्क करे "देखो, मैं दहना हाथ, मैं सब तरह का परिश्रम करता हूं, मेरी खून पानी करने वाली दासता की कमाई में सकल शरीर का भाग क्यों होना चाहिये? मेरे श्रम से कमाया हुआ भोजन पेट को और वहां से अन्य सब अवयवों को मिलना चाहिये? नहीं, नहीं। मैं सब कुछ अपने ही लिये रक्खूंगा"। इस स्वार्थपूर्ण कल्पना को चरितार्थ करने के निमित्त हाथ के लिये इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है कि भोजन को लेकर पिचकारी अथवा नश्तर द्वारा अपने चमड़े में प्रविष्ट करे। क्या यह विधि हाथ के लिये उपकारिणी होगी? असम्भव! कदापि नहीं! हां, एक तरह से हाथ खूब मोटा हो सकता है, अकेला २ इतना सम्पत्तिवान हो सकता है कि शरीर के अन्य सब अंग उससे स्पर्धा करें। बर्रैया, मधुमाखी, या सांप को पकड़ कर हाथ अपने को

कटवा सकता है। इस तरह हाथ बड़ा मोटा, खूब भारी हो जायगा। हाथ की स्वार्थपरता पूरी होने का केवल यही एक उपाय है, इसी तरह हाथ का स्वार्थमय तत्त्वज्ञान चरितार्थ किया जा सकता है। किन्तु यह कितना अवांछनीय है। इस तरह की तृप्ति या इस तरह की सफलता हम नहीं चाहते हैं। यह तो रोग है।

इसी तरह, याद रक्खो कि सम्पूर्ण जगत एक शरीर है। तुम्हारा शरीर हाथ की तरह एक अवयव है, केवल उँगली या नख के तुल्य है। यदि तुम सफल होना चाहते हो तो तुमको अपने स्वयं को अखिल विश्व के स्वयं से भिन्न और पृथक न समझना चाहिये। हाथ के फलने-फूलने के लिये यह आवश्यक है कि वह समग्र के हितों से अपने हितों की अभिन्नता का अनुभव करे। दूसरे शब्दों में, हाथ को यह समझना और अनुभव करना होगा कि उसका स्वयं कलाई से आगे के छोटे से भाग में निरुद्ध नहीं है। प्रत्युत उसे व्यवहारिक रूप से समग्र शरीर के स्वयं से अपने को एक और अभिन्न समझना चाहिये। समग्र के स्वयं को खिलाना हाथ के स्वयं को खिलाना है। जब तक तुम इस तथ्य का अनुभव और इस सत्य का आचरण न करोगे कि तुम और विश्व एक हो, कि मैं और ईश्वर एक हूँ, तब तक तुम्हें सफलता नहीं हो सकती। वियोग और विभाग के कीचड़ में जब अवरुद्ध रहते हो तब तुम आरोग्य से रहित और पीड़ित रहते हो। तुम अपने आप को समग्र और सर्व अनुभव करते ही तुम पूर्ण और सर्व हो। इस एक-पन का बोध होने से तुम कार्यतः वेदान्त का आचरण करते हो। इस दैवी और श्रेष्ठ सत्य का उल्लंघन करोगे, इस पवित्र नियम को व्यवहार में भंग करोगे

तो मूर्ख, स्वार्थी हाथ की तरह तुम्हें अपने धर्मलंघन के लिये अवश्य क्लेश भोगना पड़ेगा। "एनशेण्ट मैरीनर" नामक अपनी पुस्तक में कोलरिज ने बड़ी सुन्दरता से इस सत्य को प्रकट किया है। "प्रिज़नर आफ चिल्लन" में बाइरन ने भी ऐसाही किया है। इन पद्यों में यह सिद्ध है कि जब कभी कोई मनुष्य प्रकृति से बेमेल होजाता है तब उसे क्लेश होता है। उसी क्षण सम्पूर्ण समृद्धि तुम्हारी है जिस क्षण में अपने समभूतों से तुम अपनी एकता अनुभव करते हो।

"वही सर्वोत्तम प्रार्थना करता है जो सब से बढ़कर प्यार करता है,
मनुष्य, और पक्षी, और पशु दोनों को।
वह खूब प्रार्थना करता है जो खूब प्यार करता है,
सब चीजें बड़ी और छोटी दोनों को"।

एक महाराज एक वन में शिकार खेलने गया। आखेट की उत्तेजना में राजा अपने साथियों से छुट गया। भयंकर सूर्य-ताप के कारण उसे बड़ी प्यास लगी। वन में उसे एक छोटा बगीचा दिखाई पड़ा। वह बाग में गया। परन्तु शिकारी पोशाक में होने के कारण माली उसे न पहचान सका। बेचारे गँवई के माली ने सम्राट के दर्शन कभी नहीं किये थे। राजा बड़ा प्यासा था, उसने माली से कुछ पेय लाने को कहा। माली तुरन्त बगीचे में गया, कुछ अनार लिये, उसका रस निचोड़ा और एक बड़ा कटोरा भर कर महाराज के पास लाया। वह एक ही बार में सब गटक गया परन्तु उसकी कांटे डालने वाली प्यास बिलकुल नहीं बुझी। महाराज ने उससे और अनार का रस लाने को कहा। माली लेने गया। माली के चले जाने पर राजा अपने मन में सोचने

लगा। "यह बाग खूब फला-फूला जान पड़ता है। बात की बात में आदमी ताजे अनार-रस से भरा हुआ बड़ा कटोरा ले आया। ऐसे समृद्धिशाली पदार्थ के मालिक पर भारी आय-कर लगना चाहिये" इत्यादि। दूसरी ओर माली को देर होती गई, वह घण्टे भर में भी महाराज के पास न लौटा। बादशाह को आश्चर्य होने लगा, "यह क्या बात है कि पहली बार जब मैंने उससे कुछ पीने को माँगा तब तो वह एक मिनट से कम में ही अनार का रस ले आया और इस बार लगभग एक घण्टे से वह अनारों का रस निचोड़ रहा है किन्तु अभी तक कटोरा नहीं भरा। यह क्या मामला है?" एक घण्टे के बाद कटोरा महाराज के पास लाया गया, परन्तु लबालब नहीं भरा था। बादशाह ने पूछा कि कटोरा कुछ खाली क्यों है, जब कि पहली बार इतनी जल्दी कटोरा भर गया था। माली महात्मा था। उसने उत्तर दिया:— "जब मैं अनार-रस का पहला कटोरा आपके लिये लाने गया था तब हमारे भूपति के बड़े साधु विचार थे और जब मैं आपके लिये दूसरा कटोरा लाने गया तब हमारे महाराज का कृपालु, उदार स्वभाव अवश्य बदल गया होगा। अपने अनारों के रसीलेपन में इस आकस्मिक परिवर्तन का कोई दूसरा कारण मैं नहीं बता सकता।" राजा ने अपने मन में सोचा, देखो तो सही बात तो बिलकुल ठीक है। जब राजा ने पहले बगीचे में पैर रक्खा था तब वहां के लोगों के लिये उस की बड़ी ही उदार और प्रेममय वृत्ति थी, वह अपने मन में विचारता था कि ये लोग बड़े दीन हैं और सहायता चाहते हैं, किन्तु जब बूढ़ा मनुष्य बात की बात में अनार-रस से भरा कटोरा उसके लिये ले आया तब राजा का मन बदल गया और विचार और के और होगये। प्रकृति के स्वर से महाराज के

अलग होजाने का प्रभाव बाग के अनारों पर पड़ा। इधर महाराज द्वारा प्रेम का नियम भंग किया गया उधर वृक्षों ने उसे रस पहुँचाना अस्वीकार किया।

कहानी सच्ची हो या झूठी, इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु यह सत्य अत्याज्य है कि जब तक प्रकृति से हम पूरे मिले रहेंगे, जब तक आप का अखिल विश्व से स्वरैक्य रहेगा और आप हरेक तथा सब से अपनी एकता समझते तथा अनुभव करते रहेंगे तब तक सभी परिस्थितियां और आस-पास की चीजें, हवा और लहरें तक, आप के पक्ष में रहेंगी। जिस क्षण तुम्हारी सर्व से फूट होगी उसी क्षण आप के मित्र और सम्बन्धी आप के विरोधी हो जांयगे, उसी क्षण सारे संसार को आप अपने विरुद्ध सशस्त्र खड़ा कर लेंगे। प्रेम के इस दैवी नियम को समझो और बर्तो। प्रेम सफलता का एक सजीव सिद्धान्त है।

सफलता का चौथा सिद्धान्तः—प्रसन्नता।

सफलता का चौथा सिद्धान्त स्थिरता (धृति,आत्मनिष्ठा) अथवा प्रसन्नता है। और स्थिरता या प्रसन्नता कैसे रक्खी जा सकती है? "प्रसन्न हो,शान्त हो,सावधान हो", यह कहना बड़ा सहल है। किन्तु सब अवस्थाओं में प्रसन्न, शान्त, और सावधान रहना बड़ा कठिन है। कृत्रिम नियमों से आप कुछ भी नहीं कर सकते। तो फिर हम अपने को प्रसन्न क्यों कर रख सकते हैं? आपकी वृत्तियों का शासन कौन करता है? वेदान्त बताता है कि जब हम शरीर के, क्षुद्र स्वयं और प्रबल आकांक्षाओं के समतल पर उतरते हैं तभी हम उदासीन, प्रसन्नतारहित, संक्षुब्ध, उदास और विषण्ण होजाते हैं। केवल तभी हमारी स्थिरता जाती रहती है।

हमें अपने पेट का खयाल तभी होता है जब वह रोगी होता है। हमें अपनी नाक का ध्यान तभी होता है जब सर्दी लगती है। जब बाँह में खुजली होती है केवल तभी हमें उसका बोध होता है। इसी तरह जब हमारी आध्यात्मिक व्यवस्था बिगड़ जाती है केवल तभी हमें व्यक्तिगत अहं, क्षुद्र स्वयं, या शरीर का बोध होता है। शरीर के लिये एकाग्र मनोयोग और व्यक्तिगत तुच्छ अहं के प्रति चिन्ता-उत्पादक ध्यान में शोचनीय आत्मिक बीमारी निहित है। हमारी शारीरिक निर्बलता ज्योंही अपना रंग जमाती है त्योंही हम नन्दन कानन से गिर पड़ते हैं। भेद और अन्तर के वृक्ष के फल को जीभ पर धरतेही हम वैकुण्ठ से नीचे फेंक दिए जाते हैं। किन्तु मांस [शरीर] को सूली पर चढ़ाना अंगीकार करके हम खोये हुये स्वर्ग को फेर सकते हैं। जिस क्षण आप शरीर से ऊपर उठें, क्षुद्र स्वार्थपूर्ण, नीच, तुच्छ, नन्हें अनुबंधों से ऊपर उठें, उसी समय अपने समतोलन को फेर सकते और प्रसन्न हो सकते हैं।

इस प्रकार प्रसन्नता, स्थिरता या धृति पाने के लिये आपको वेदान्त की मुख्य शिक्षा को, इस नित्य सत्य को, कि आपकी सच्ची आत्मा या आपका वास्तविक स्वयं एक मात्र यथार्थ वास्तविकता है, अमल में लाना होगा। कठोर तथ्य अर्थात् अपनी सच्ची आत्मा में जब आप पगे होते हैं तब चमत्कारिक सांसारिक अवस्थायें आपके लिये चंचल, चपल, और लचीली हो जाती हैं। मैं शरीर नहीं हूँ। समस्त शारीरिक लगाव, सम्बन्ध, और बन्धन केवल खेल की चीजें हैं। वे केवल नाटकाभिनय के नाते अथवा कार्य हैं। मुझ नट का एक मनुष्य मित्र है और एक मनुष्य शत्रु, दूसरा

मनुष्य मेरा पिता है, कोई और पुत्र है। किन्तु वास्तव में न मैं पिता हूं और न पुत्र, शत्रु और मित्र न शत्रु हैं और न मित्र। मैं पूर्ण ब्रह्म हूं। सांसारिक बन्धनों और सम्बन्धों से मेरा कोई मतलब नहीं। सब सम्बन्ध माया मात्र हैं। हरेक अभिनेता को खेल में अपने कर्म का निर्वाह भलीभांति करना चाहिये, परन्तु जो कोई प्रीति या अप्रीति के अपने नाटकीय कर्म को हृदय में स्थान देता है और उसका अपने वास्तविक स्वयं से सम्बन्ध जोड़ता है वह पागल से किसी तरह कम नहीं। और संसार जब नाट्य-प्रदर्शन मात्र ही है तो कर्त्तव्य-कर्म के बाह्य रूपों में अनुचित महत्ता मुझे क्यों समझना चाहिये? यदि कोई महाराजा है तो उससे ईर्ष्या क्यों, और यदि कोई भिक्षुक है तो उससे घृणा किस लिये?

"प्रतिष्ठा और अपमान की उत्पत्ति किसी दशा से नहीं होती;
अपना कर्म भली भांति निबाहो, इसी में सब इज्जत है"।

वेदान्त सिखाता है कि तुम को अपनी परिस्थितियों और इर्द-गिर्द के लिये न आकुल होना चाहिये। नियम को जानो और सब भयों को झाड़ दो। मान लो, एक न्यायकर्त्ता है। वह अपने न्यायालय में आता है और अपना आसन ग्रहण करता है। वह न्याय-प्रार्थियों, लिखने-पढ़ने वालों, वकीलों, चपरासियों और अन्य लोगों को अपनी राह देखते हुए पाता है। न्यायकर्त्ता को गवाहों को बुलवाना नहीं पड़ा, वकीलों को आमंत्रित नहीं करना पड़ा, अथवा वादियों और दूसरों को जाकर पुकारना नहीं पड़ा। उसे कमरे की गर्द नहीं झाड़ना पड़ी, फर्श पर झाड़ू नहीं लगाना पड़ा, चौकी नहीं लगाना पड़ी, इत्यादि। जिस तरह सूर्य के उदय होने ही से सब प्रकृति जाग पड़ती है, पौधे, पक्षी, पशु, नदी, और

मनुष्य सजग हो जाते हैं, ठीक उसी तरह न्यायकर्ता के प्रभाव मात्र से सब चीजें यथास्थान हो जाती हैं। इसी प्रकार जब तुम दृढ़तापूर्वक सत्य में अपना रोपण करते हो, जब आप तटस्थ परम न्यायाधीश—स्वयं आपकी आत्मा—के आसन पर अपने को आरूढ़ करते हैं, जब आप का प्रभामय स्वयं अपनी पूरी दमक से चमकता है, तब सब परिस्थितियां, आपका समस्त आस-पास अपनी चिन्ता आप कर लेगा, हरेक चीज सजग हो जायगी और आपकी उपस्थिति के मनोहर प्रकाश में यथास्थान हो जायगी। भारत के श्रेष्ठतम नायक राम के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब वे सीता—जो दैवी विद्या-रूपिणी है—का उद्धार करने चले तब समस्त प्रकृति ने उनको सहायता की। बन्दरों, चिड़ियों, गिलहरियों और जल, पवन, पत्थरों तक ने उनका पक्ष लेने में एक दूसरे से चढ़ा उतरी की। अधम आसक्ति और पतनकारिणी घृणा से दूर रहकर अपने स्वयं की प्रभा और राज्यश्री की ज्योति दिखाइये, फिर यदि नीच गुलामों की तरह देवता और देवदूत आपकी सेवा न करें तो उनको धिक है। हरेक व्यक्ति बच्चे के दुलार क्यों सहता है? नन्हा अत्याचारी परम बलवान कंधों पर चढ़ता और मुकुटधारी शिरों के बाल नोचता है। यह क्या बात है? इसी लिये कि बच्चा परिस्थितियों से परे, अज्ञातभाव से परमात्मा में निवास करता है।

यदि आप अपने कर्त्तव्य को पालते रहें, यदि आप अपने काम के वफादार हैं, तो बाहरी सहायताओं और मददों के लिये न घबड़ाइये। वे अवश्य आपको मिलेंगी, वे आने को बाध्य हैं। जब आप व्याख्यान देते हैं और उसमें कोई बात

सुरक्षित होने के योग्य है तो मत उद्विग्न हो कि कौन आकर उसे लिख लेगा या प्रकाशित करेगा, इत्यादि। न्यायाधीश का स्थान ग्रहण करो, अपनी प्राक्कालीन पदवी पर दृढ़ हो जाओ, बाहरी मामलों और बाहरी सहायताओं के लिये आशंकाओं से अपनी प्रसन्नता को कभी न नष्ट करो।

शरीर के किसी भी भाग में जब खुजली मालूम पड़ती है तब हाथ आप से आप खुजलाने के लिये उस भाग पर पहुँच जाता है। हाथ के नीचे जो शक्ति या स्वयं है वह आदिश वही शक्ति या स्वयं है जो खुजली के स्थान के नीचे है। मन में रक्खो कि ठीक इसी तरह तुम में जो स्वयं है वह वही स्वयं है जो आसपास में या अगल-बगल की वस्तुओं में है, और जब तुम्हारा मन इस नीचे रहनेवाले परम स्वयं से संगति में लहराता या आन्दोलित होता है और तुम्हारे शरीर के लिये वह (परम स्वयं) समग्र संसार हो जाता है तब बाहरी सहायताएँ और उपकार स्वभावतः और अनायास उड़ कर उसी तरह आपके पास आवेंगे जिस तरह हाथ खुजली की जगह पर पहुँच जाता है।

जब हम अपनी प्रतिच्छाया को पकड़ने दौड़ते हैं तो वह कभी हाथ नहीं आती, छाया हमेशा हम से आगे दौड़ती है। किन्तु यदि प्रतिच्छाया की ओर पीठ फेर कर हम सूर्य की ओर दौड़ें तो वह हमारा पीछा करेगी। इसी तरह जिस क्षण तुम इन बाहरी पदार्थों की ओर फिर कर इन्हें पकड़ना और रखना चाहोगे उसी घड़ी ये तुम्हारी पकड़ बचा जायँगे तुमसे आगे दौड़ेंगे। ज्यों ही आप उन की ओर पीठ फेरेंगे और परम प्रकाश अर्थात् अपने आन्तरिक स्वयं की ओर मुँह करेंगे त्योंही उपकारी अवस्थाएँ आपको ढूढ़ेंगी। यही

नियम है।

"कर्त्तव्य" के नाम से ही अधिकांश लोग पीले पड़ जाते हैं, खिन्न हो जाते हैं। कर्त्तव्य हौवे की तरह उन्हें जब तक सताता है, उन्हें कूटता रहता है, उन्हें चैन नहीं लेने देता, हर घड़ी सिर पर सवार रहता है। ऐसे जल्दबाज गुलाम, बल्कि "कर्त्तव्य" के यंत्र, जल्दी के विचार से जितना लाभ उठाते हैं उतनी ही शक्ति खोते हैं। कर्त्तव्यबुद्धि को अपने पैर न उखाड़ने (समतोलन न बिगाड़ने) दो अथवा अपने मन को न हताश करने दो। याद रक्खो कि सम्पूर्ण कर्त्तव्य को अपने ऊपर लादने वाले मूल में तुम्ही हो। अन्त में तुम आप ही अपने मालिक हो। तुमने स्वयं अपने पद चुन, सेवा करने को तैय्यार हुए, और अपने हाकिम रखे। अब यदि आपको उनके रुपये-पैसे की जरूरत है, तो वे उसी मात्रा में आपकी सेवा चाहते हैं। शर्तें बराबरी की हैं, क्रिया और प्रतिक्रिया समान हैं। आप अपनेही संकल्प की सेवा करते हैं, किसी और दूसरे की नहीं। आप का वर्तमान आस-पास आप ही की रचना है, सम्बन्धों की छोटी सी दुनिया आप ही की कारीगरी है, आपका भविष्य आपही का बनाया हुआ होगा। अपने प्रारब्ध के कर्त्ता आपही हैं। इसे जानिये और प्रसन्न होइये, गद्गद् होइये।

"विचार पर विचार से हम अपना भविष्य गढ़ते हैं,
बुरा या भला और यह जानते नहीं हैं।
नसीब ही दूसरा नाम है विचार;
तो फिर अपना नसीब चुन लो, और उसकी राह देखो।
मन उसके क्षेत्र का स्वामी है;
शान्त रहो, तत्पर और सच्चे रहो;

भय ही एक मात्र भयंकर शत्रु है।
तुममें जो ईश्वर है उसे उठने और कहने दीजिये,
विपरीत अवस्था से—'मेरी आज्ञा मानो
और तुम्हारी प्यारी इच्छा पूरी होजायगी"।

किसी तरह काल काटने वाले मजूर की तरह काम न करो। आनन्द के लिये, उपयोगी कसरत समझ कर, सुख-क्रीड़ा अथवा मनोरञ्जक खेल समझ कर कुलीन राजकुँवर की तरह काम करो। दबे हुए दिल से कदापि किसी काम को न हाथ में लो। अपने आप हो जाओ। अनुभव करो कि महाराज और राष्ट्रपति तुम्हारे चाकर मात्र हैं। नक्षत्रों की तरह काम करो—

"अपने समीप की सब चीज़ों से बिना भय खाये,
दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं से बिना भीत हुए,
ये नहीं माँगते कि हमसे बाहर की चीज़ें
हमें प्रेम, मनोरञ्जन, सहानुभूति अर्पण करें,
गान का अनोखा पुरस्कार
गान था—वही अपनी किलक (किलकारी) और दमक
जो खिलते हुए फूलों की होती है,
और बुलबुलें तथा लाल [जिसे-। किलकारी और दमक
को) जानते हैं"।

किसी तरह की जिम्मेदारी न बोध करो. कोई इनाम न माँगो। अपने लिये प्रमाण तुम आपही हो। किसी भी कर्त्तव्य-ज्ञान या बाहरी अधिकार को आप अपने ऊपर छाया डालने वाला मेघ न होने दीजिये। बाहरी अधिकारी की दी हुई आज्ञा अधिक से अधिक ठीक २ नपी-तुली हो सकती है; किन्तु जिस आज्ञा की रचना तुम स्वयं करोगे वह स्वभाव सिद्ध होगी।

सफलता का पाँचवां सिद्धान्त—निर्भीकता।

अब हम सफलता के पाँचवे सिद्धान्त निर्भीकता पर आते हैं। निर्भयता क्या वस्तु है? माया में बिलकुल विश्वास न होना और वास्तविक स्वयं का जीता-जागता ज्ञान और उस पर निष्कपट विश्वास होना। डर हमारे पास तभी आता है जब हम अपने को भय का आलय या शरीर समझते हैं। शरीर सदा ही चिन्ता-कीटों से भक्षणीय है। वह सब तरह की पीड़ाओं, उसे भेद और दाब सकती हैं। जिस क्षण हम क्षुद्र शरीर से ऊपर उठते हैं उसी क्षण हम भय से छूट जाते हैं। ईश्वर की तरह जीवन बिताओ, वेदान्त का व्यवहार करो, फिर तुम्हें कौन हानि पहुँचा सकता है? कौन तुम्हें चोट दे सकता है? वेदान्त और निर्भीकता को अलग नहीं किया जा सकता। निर्भीकता सफलता के लिये बहुत बहुत जरूरी किस तरह है? इसके लिये अपने अनुभव में आई हुई एक बात का उदाहरण दूंगा। हिमालय के वन में एक बार पाँच रीछ एक साथ ही राम के सामने आगये, परन्तु उन्होंने उसे (राम को) जरा भी नहीं सताया। यह क्यों? केवल निर्भयता के कारण। राम में यह भावना भरी हुई थी, "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं चित्त नहीं हूँ, मैं परब्रह्म हूँ, मैं ईश्वर हूँ, अग्नि मुझे जला नहीं सकती, शस्त्र मुझे घायल नहीं कर सकता"। उनसे नजर मिलाई गई और वे भाग गये। एक बार जंगली भेड़िया इसी तरह भगाया गया। दूसरी दफे एक चीता यों ही चलता हुआ। जब बिल्ली आती है तो कबूतर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। वे समझते हैं कि हम बिल्ली को नहीं देखते इस लिये बिल्ली भी हमें नहीं देखते। फिर भी बिल्ली उन्हें खाही जाती है। यदि तुम

डरोगे तो बिल्ली तुम्हें खा जायगी। क्या आपने यह खयाल नहीं किया है कि गँवई गांव की ओर से निकलते हुए जब हम नाम मात्र को भी भीत होने के लक्षण दिखाते हैं तो कुत्ते हम पर झपट पड़ते और दिक करते हैं? यदि हम डरेंगे तो कुत्ते भी हमें नोच डालेंगे। किन्तु यदि हम बेडर हैं तो हम सिंहों और चीतों को भी जीत और हिला सकते हैं। एक पात्र से दूसरे पात्र में पतली चीज़ ढालते समय यदि हमारे हाथ जरासा भी कांप जाते हैं तो अवश्य वह वस्तु गिर जाती है। बेभरम होकर, निर्भयता से, विश्वासपूर्वक तरल पदार्थ दूसरे बरतन में उलटोगे तो एक बूंद भी न गिरेगा।

भय और सन्देह से ही तुम अपने को मुसीबतों में डालते हो। किसी बात से भी अस्थिर और चकित न हो। तुम सर्व हो। क्या यह करुणाजनक बात नहीं है कि छोटे से पटाके, या छोटे से चूहे, या पत्ती की खुरखुराहट की आवाज, बल्कि थर्राती हुई छाया, ऊन पहने हुए पूरे दो मन मांस को चौकन्ना करदे? संकट की भीति से बढ़कर कोई संकट नहीं है। मृत्यु के भय को मन में स्थान देने के बदले मर जाना मैं पसन्द करूंगा।

किसी ने कहा है:-"जिस के मन में चलनेवाला पौधा नहीं था उसे कभी भी चलनेवाला पौधा नहीं मिला"। यदि तुम्हारे मन में प्रीति है तो तुम्हें प्रीति मिलेगी। यदि तुम अप्रीति का पोषण करते हो तो तुम्हें अप्रीति मिलेगी। यदि तुम्हें प्रतारकों और जासूसों का डर है तो तुम उनसे बचोगे नहीं। यदि तुम स्वार्थपरता और कपट की आशा करते हो तो तुम निराश न होगे, चारों ओर से स्वार्थ-परता और कपट तुम्हारे सामने आवेगा। तो फिर डरो मत, अपने में

पवित्रता और विशुद्धता को रक्खो, तुम्हारा कभी किसी अस्वच्छ वस्तु से सामना न पड़ेगा। जीवनसाफल्य और आत्मिकसाफल्य का साथ रहना चाहिये। वे भ्रान्त हैं जो एक का दूसरे से विच्छेद करते हैं।

चोर उसी घर में सेंध लगाते हैं जो अरक्षित होता है। यदि घर में बराबर रोशनी रहे तो वे घुसने की हिम्मत न करेंगे। सत्य का प्रकाश सदा अपने चित्त में सदा प्रज्वलित रक्खो फिर भय या प्रलोभन का पिशाच तुम्हारे निकट न जायगा। ईश्वरी नियम पर विश्वास करो। लौकिक बुद्धि के फेर में पड़ कर अपने जीवन को कष्टमय न बनाओ। कातर चतुरता तुम्हें पूरा २ नास्तिक बना देती है। परिस्थितियों के कुहासे और धुंध से अपने को मेघाच्छन्न क्यों होने देते हो? क्या तुम सूर्यों के सूर्य नहीं हो? क्या तुम विश्व के प्रभु नहीं हो? परिस्थितियों की ऐसी कौन सी चपलता है जिसे तुम हटा नहीं सकते, फाड़ नहीं सकते, फूक कर उड़ा नहीं सकते,? किसी धमकानेवाली परिस्थिति को नाम मात्र को भी असली समझने का विचार तुमसे दूर रहे। निर्भय, निर्भय, निर्भय तुम हो।

सफलता का छठा सिद्धान्तः—आत्म-निर्भरता।

सफलता का छठा सिद्धान्त स्वावलम्बन है। आप जानते हैं कि हाथी सिंह से कहीं बड़ा पशु है। हाथी का शरीर सिंह के शरीर से कहीं अधिक बलवान मालूम पड़ता है। तथापि अकेला एक सिंह हाथियों के झुंड को भगा सकता है। सिंह की शक्ति का रहस्य क्या है? एक मात्र रहस्य यही है कि सिंह अमली वेदान्ती है और हाथी द्वैतवादी हैं। हाथी शरीर पर विश्वास करते हैं। सिंह व्यवहारतः

शरीर में नहीं विश्वास करता; वह शरीर से किसी उच्चतर वस्तु, आत्मा में विश्वास करता है। यद्यपि सिंह का शरीर अपेक्षाकृत बहुत छोटा है परन्तु कार्यतः वह अपनी शक्ति असीम मानता है, अपनी आन्तरिक शक्ति अनंत मानता है। हाथी चालीस या पचास और कभी कभी सौ सौ या दो दो सौ का दल बना कर रहते हैं और जब कभी वे आराम करते हैं तो सदा एक प्रबल हाथी को पहरेदार बना देते हैं। उन्हें डर बना रहता है कि कहीं शत्रु चढ़ न आवे और खा न जाय। वे यह नहीं जानते कि यदि अपने में विश्वास हो तो, हम में से एक २ हजारों सिंहों का संहार कर सकता है। किन्तु बिचारे हाथियों में भीतरी आत्मा पर विश्वास नहीं होता और फलतः साहस का भी अभाव होता है।

इस तरह पर आत्म-विश्वास कल्याण का एक मूल सिद्धान्त है। वेदान्त सिखाता है कि अपने आप को अधम, नीच, पीड़ित पापी या अभागा न कहो। तुम अनन्त हो। तुम सर्वशक्तिमान परमात्मा हो, अनन्त परमेश्वर तुम हो। इस पर विश्वास करो। कितना प्राण-सञ्चारी सत्य है! बाह्य पर विश्वास करते ही तुम असफल होते हो। यही नियम है।

मुकद्दमेबाजी में उलझे हुए दो भाई न्यायकर्त्ता के सामने गये। उनमें से एक लक्षाधीश था, दूसरा कंगाल। न्यायकर्त्ता ने लक्षाधीश से पूछा कि वह इतना अमीर और उसका भाई इतना गरीब कैसे होगया। उसने कहा, "पाँच वर्ष पूर्व हमें अपने बापदादे की समान २ सम्पत्ति मिली। दो लाख रुपया मेरे हिस्से में आया और इतनाही मेरे भाई के हिस्से में।

यह मनुष्य अपने को धनी समझ कर आलसी होगया (आप जानते हैं कि कुछ धनवान परिश्रम करना अपनी शान के खिलाफ़ समझते हैं) और सभी काम अपने नौकरों को सौंप दिए। यदि कोई चिट्ठी उसके पास आती थी तो अपने नौकरों को देकर कहता था, "जाओ, इस काम को करो"। जो कुछ भी काम करने को होता था वह अपने नौकरों से करने को कहता था। इस तरह चैन और आराम में वह अपना समय काटने लगा। "खाना, पीना, और मौज उड़ाना" उसका काम रह गया। वह अपने नौकरों को सदैव आज्ञा देता था, "जाओ, जाओ, यह काम करो या वह काम करो"। अपने सम्बन्ध में धनिक पुरुष ने कहा, "मैंने जब अपने दो लाख रुपये पाये तो मैं अपना काम किसी दूसरे को नहीं देता था। जब कभी कुछ करना होता था तो सदा मैं स्वयं उसे करने दौड़ता था और नौकरों से कहता था, "आओ, आओ, मेरे पीछे आओ"। मेरी जीभ पर हमेशा जाओ, जाओ, शब्द रहते थे, और मेरे भाई की जीभ पर 'आओ, आओ'। उसके अधिकार की हरेक वस्तु ने उसके तकिया कलाम का पालन किया। उसके नौकरों, मित्रों, दौलत या सम्पत्ति ने उसे त्याग दिया, बिलकुल छोड़ दिया। मेरा सिद्धान्त वाक्य था 'आओ'। मित्र मेरे पास आये, मेरी सम्पत्ति बढ़ी, हरेक चीज बढ़ी"।

. . .

जब हम दूसरों पर भरोसा करते हैं तब कहते हैं, "जाओ, जाओ"। हरेक चीज चली जायगी। और जब हम स्वयं पर भरोसा करते हैं और आत्मा के सिवाय किसी पर भी निर्भर नहीं करते हैं तब सब चीजें हमारे पास आकर जमा हो जाती हैं। यदि तुम अपने को गरीब, तुच्छ कीट समझते हो

तो वही होजाते हो। और यदि तुम अपना सम्मान करते हो और अपने स्वयं पर निर्भर करते हो तो बड़ाई तुम्हें प्राप्त होती है। जैसा तुम सोचोगे वही अवश्य हो जाओगे।

भारत के एक स्कूल में एक निरीक्षक (इंसपेक्टर) आया। शिक्षकों ने एक लड़के को दिखला कर कहा कि वह इतना तेज़ है कि अमुक २ काव्य, मिल्टन का 'पाराडाइज लास्ट' कह लीजिये, उसे कण्ठाग्र है और कोई भी अंश वह सुना सकता है। विद्यार्थी निरीक्षक के सामने पेश किया गया किन्तु उसमें वेदान्त का भाव नहीं था। उसने लज्जा और नम्रता धारण की। जब उससे पूछा गया, "तुम्हें अमुक खण्ड कण्ठाग्र है"? उसने कहा, "जी नहीं, मैं कोई चीज नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता"। इन शब्दों को उसने नम्रतासूचक, लज्जाशीलता का लक्षण समझा। "नहीं जनाब, मैं कुछ नहीं जानता, मैं ने उसे नहीं रटा था"। निरीक्षक ने फिर पूछा। किन्तु लड़के ने फिर भी कहा, "नहीं महाशय, जी नहीं, मैं तो नहीं जानता"। शिक्षक का मुँह उतर गया। एक और लड़का था। उसे पूरी पुस्तक मुखाग्र नहीं थी। किन्तु उस ने कहा, "मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ कि जो कोई अंश आप चाहेंगे वह सुना सकूँगा"। निरीक्षक ने उससे कुछ प्रश्न किये। लड़के ने सब सवालों का उत्तर फटाफट दे दिया। इस दूसरे लड़के ने चरण पर चरण सुना दिए और इनाम पाया। आप जितना मूल्य अपना समझते हैं उससे अधिक मूल्य का आपको कोई न अन्दाजेगा।

कृपा कर के अपने को दीन, हीन, अभागे प्राणी न बनाइये। जैसा सोचोगे वैसे ही तुम हो जाओगे। अपने को ईश्वर समझो और तुम ईश्वर हो। अपने को तुम स्वाधीन

समझो और उसी क्षण स्वाधीन हो जाते हो।

एक दिन एक वेदान्ती के घर में एक मनुष्य आया और मकान-मालिक की गैरहाजिरी में गद्दी पर बैठ गया। जब घर का मालिक कमरे में लौटा आ रहा था तब घुस आने वाले ने यह सवाल किया, "ऐ वेदान्ती, मुझे बता कि ईश्वर क्या है, और मनुष्य क्या है"। महात्मा ने प्रश्न का प्रत्यक्ष रीति पर उत्तर नहीं दिया। वह केवल अपने नौकरों को पुकार कर चिल्लाने और कटु भाषा का प्रयोग करने लगा, और उनसे उसे (घुस आने वाले को) घर से निकाल देने को कहा। यह अद्भुत भाषा वास्तव में बुद्धिमान मनुष्य ने व्यवहार की। जब ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया जिस की आशा नहीं थी तो आगन्तुक डर गया और घबड़ा कर गद्दी से हट गया। बुद्धिमान मनुष्य उस पर जा विराजा और शान्ति भाव से, गम्भीरता पूर्वक उससे कहा, "यहां (अपने को बता कर) तो ईश्वर है और वहां (आगन्तुक को बता कर) मनुष्य है। यदि तुम डर न जाते, यदि तुम अपने स्थान पर डटे रहते, यदि तुम अपनी स्थिरता कायम रखते, यदि तुम्हारा चेहरा न उतर जाता, तो तुम भी ईश्वर थे। किन्तु तुम्हारा कांपना, थर्राना, और अपने ईश्वरत्व में विश्वास न रहना ही तुम्हें हीन कीट बनाता है"। अपने आप को ईश्वर समझो, अपने ईश्वरत्व में सजीव विश्वास रक्खो, फिर कोई तुम्हारी हानि न कर सकेगा, कोई भी तुम्हें क्षति न पहुँचा सकेगा।

जब तक तुम बाहरी शक्तियों पर भरोसा और निर्भर करते रहोगे तब तक असफलता ही परिणाम होगा। अन्तर्गत ईश्वर पर भरोसा करते हुए शरीर को काम में लगाओ,

सफलता निश्चित है। यदि पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आता तो मोहम्मद पहाड़ के पास जायगा। एक आदमी भूखा था। अपनी भूख बुझाने के लिये वह एक जगह आँखें मीच कर बैठ गया और काल्पनिक भोजन करने लगा। कुछ देर बाद वह मुँह खोले हुए अपनी जली जीभ ठंढी करते देखा गया। किसी ने उससे पूछा,क्या मामला है। उसने कहा कि मेरे भोजन में गर्म मिर्चा था। नाम तो ठंढा है परन्तु चीज़ है बड़ी गर्म *। इस पर एक पास खड़े मनुष्य ने कहा, "अरे गरीब आदमी, यदि मानसिक भोजन पर ही तुझे निर्वाह करना है तो गर्म मिर्च के बदले कोई मीठी वस्तु ही क्यों नहीं चुनता। जब यह तुम्हारी ही सृष्टि, तुम्हारी ही करतूत, तुम्हारी अपनी ही कल्पना थी, तो कोई अच्छी चीज क्यों नहीं पसन्द की?

वेदान्त कहता है आपका समग्र संसार आप ही की रचना, आप ही का विचार है, अपने आपको नीच, अभागा पापी क्यों समझते हो? अपने को ईश्वर का निर्भीक और आत्म-निर्भर अवतार क्यों नहीं समझते?

'सत्य में सजीव विश्वास रक्खो, इर्द-गिर्द की चीजों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो, अपनी सर्व परिस्थितियों का यथोचित मूल्य जानो, और इस दर्जे तक आत्मानुभव करो कि यह संसार तुम्हें मिथ्या जान पड़ने लगे। क्या तुम्हे पता नहीं कि ज्योतिषशास्त्र के अनुसार स्थिर नक्षत्रों का अन्तर गुनने में यह संसार अंकगणित का एक बिन्दु मात्र समझा जाता है, उन नक्षत्रों और ग्रहों के सम्बन्ध में यह संसार कुछ

---

* अंग्रेजी में मिर्च को "चिली" (Chilli) कहते हैं। "चिली" का दूसरा अर्थ ठिठुराने वाला भी है।

नहीं, शून्य मात्र माना जाता है । यदि ऐसा है, तो सर्वश्रेष्ठ अनन्तशक्ति, आत्मा की तुलना में यह पृथ्वी क्या कोई चीज हो सकती है ? यह समझो, यह अनुभव करो । प्रकाशों के प्रकाश तुम हो, समस्त गौरव तुम्हारा है । यह समझो और इस दर्जे तक इसे अनुभव करो कि यह पृथिवी और नाम तथा यश, लौकिक सम्बन्ध, लोकप्रियता और लोक-अप्रियता, सांसारिक मान और अपमान, शत्रुओं की निन्दा और मित्रों की खुशामद तुम्हारे लिये निरर्थक चीजें हो जाँय । सफलता का यह रहस्य है ।

नियागारा नदी की तेज धारा दो आदमियों को बहाये लिये जाती थी । उनमें से एक को एक बड़ा लट्ठा मिल गया और जान बचाने की इच्छा से उसने उसे पकड़ा । दूसरे मनुष्य को नन्ही सी रस्सी मिली । किनारे के आदमियों ने इन दोनों के बचाने के लिये यह रस्सी फेंकी थी । सौभाग्य से दूसरे मनुष्य ने यह रस्सी पकड़ ली, जो लकड़ी के लट्ठे के समान भारी नहीं थी । रस्सी यद्यपि जाहिरा बहुत ही डाँवाडोल और भंगुर थी तथापि वह बच गया । किन्तु जिस आदमी ने लकड़ी का बड़ा लट्ठा पकड़ा था वह फुर्ती से लट्ठे के साथ बह कर गर्जनशील प्रपातों के नीचे तरङ्गायित जल की खुली हुई समाधि में पहुंच गया ।

इसी तरह पर, ऐ संसारी लोगो, तुम इन बाहरी नामों, कीर्ति, ऐश्वर्य, वैभव, दौलत और समृद्धि पर भरोसा करते हो । ये लकड़ी के लट्ठे की तरह बड़े मालूम होते हैं किन्तु ये बचानेवाले साधन नहीं हैं । बचानेवाला सिद्धान्त महीन तागे की तरह है । वह भौतिक नहीं है, तुम उसे छू नहीं सकते, तुम उसे हथिया और टटोल नहीं सकते । सूक्ष्म

सिद्धान्त, सूक्ष्म सत्य, बहुत ही नन्हा है। किन्तु वही तुम्हें बचानेवाली रस्सी है। ये सब संसारी चीजें, जिन पर तुम निर्भर करते हो, केवल तुम्हारे नाश का कारण होंगी और निराशा, चिन्ता, तथा पीड़ा के गहरे गर्त्त में तुम्हें गिरावेंगी। सावधान, सावधान। सत्य को पोढ़े पकड़ो। बाहरी पदार्थों की अपेक्षा सत्य पर अधिक विश्वास रक्खो। प्रकृति का नियम है कि जब मनुष्य असली तौर पर बाहरी पदार्थों और दौलत पर विश्वास करता है तो उसे असफल होना पड़ता है। यही नियम है। ईश्वर पर भरोसा करो और तुम सुरक्षित हो। अपनी इन्द्रियों के बहकाने में न आओ।

अपने पड़ोसियों की सूचनाओं और वशीकरण से ऊपर उठो। तुम्हारे सब सांसारिक बन्धन और सम्बन्ध तुम्हें चिन्ता और दुर्भाग्य के वश में डालते हैं। उन से ऊपर उठो। सत्य में विश्वास करो, ईश्वर से अपनी अभिन्नता का अनुभव करो और तुम्हारा निस्तार है, बल्कि तुम स्वयं मुक्ति हो।

नारायण न करे कि वास्तविक आत्मा की अपेक्षा संसार पर आप अधिक गम्भीरता से ध्यान दें। अपने को परिमित करुणा पात्र, इन्द्रिय—विशिष्ट अहं न बनाये रक्खो। किसी चीज से भी न चिढ़ो। काम उसी निर्लिप्त भाव से करो जिस तरह वैद्य लोग अपने रोगियों की चिकित्सा करते हैं और रोग को अपने पास नहीं फटकने देते। सब उलझनों से मुक्त, अप्रभावित गवाह की भावना से काम करो। स्वतंत्र रहो।

सफलता का सातवां सिद्धांतः—विशुद्धता।

सफलता को असंदिग्ध बनानेवाली अन्तिम बात परन्तु महत्ता में कम नहीं है वह है पवित्रता। यह सत्य है कि विचार

प्रारब्ध का दूसरा नाम है, मनुष्य जो कुछ विचार करता है वही होजाता है। किन्तु यदि आप गन्दी बातें विचारने लगें और पतित बनाने वाले दुराचारों को पोषण करें तो इन स्वार्थमय इच्छाओं की पूर्ति के साथ २ हृदय को चूर्ण कर देनेवाली पीड़ा, अति वेदनाकारी यातना और उन्मादकारी शोक भी सौदे में आप पर जबर्दस्ती लादा जायगा। शोक आप की आत्मा को दबोचेगा। मूर्ख समझता है कि वह इन्द्रियों के सुख लूटता है, किन्तु यह नहीं जानता कि अस्वच्छ विचार या कार्य में उसकी जीवन-शक्ति ही मोल ले ली जाती है, बिक जाती है और नष्ट होजाती है। स्वार्थमय उद्देश्यों के लिये जब तुम कर्म का दुरुपयोग करते हो तब कर्म का क़ानून प्रतिकार करता और तुम्हें व्यर्थ कर देता है। ईश्वर को आदेश मत दो। शारीरिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने दो। सांसारिक आवश्यकताओं में ईश्वर की मर्जी को अपनी मर्जी बनालो। समझो, समझो कि तुम वही परम शक्ति हो जिसकी इच्छा ने परिस्थितियों के रूप की रचना की है। अपनी गरीबी को अपनी ही करतूत समझ कर सानन्द भोगो। किन्तु यदि विषयवासना तुम्हे पथभ्रष्ट करदे और कामुकता के दलदल में अपने को फँसा हुआ पाओ तो अपनी भागवत दशा अथवा आत्मानुभूति को पाने और बनाये रखने के लिये अपनी प्रबल इच्छा शक्ति का ज़ोर दिखाओ और उससे बड़े यत्न से काम लो। इस देश में कामुकता पर प्रेम के पवित्र नाम का कलप किया जाता है। कैसा पाखंड है! लोगों के जीवन में एकाग्रता नहीं होती। असाधारण स्नेह और असाधारण वासनाएँ उनके दिनों को पैबंदों में काट और बाँट देती हैं। शायद ही कभी कोई युवक अपने भाव प्रकट करने में लगी चिपटी न रखता हो। सर्व

साधारण में प्रकट होने वाला युवक सदा ही अंगभंग अपूर्णाङ्ग, बल्कि उस (युवक) का अत्यन्त अनुचित, जर्जरित अंश होता है। एक अंश तो उसका उसकी प्रेयसी के पास रहता है और दूसरा किसी दूसरे ही पदार्थ में लगा रहता है। अपने कार्य को प्यार करो, जहां तुम्हारा हाथ हो वहीं अपने मन को भी रक्खो। हाथ और पैर तो गरम रहें, काम करते रहें, किन्तु अपना मस्तिष्क शान्त और एकाग्र रक्खो। अपने विचारों को सदा स्वस्थ, वास्तविक स्वयं में केन्द्रित रक्खो, और परिस्थितियों की कोई परवाह न करो। मानव जाति का हित करने के विचार से अपने को हैरान न होने दो। संसार इतना दीन क्यों हो कि वह निरन्तर तुम्हारे ध्यान की भिक्षा करता रहे? शरीर को तुम्हारी अपनी ही मुक्ति के लिये काम करता रहने दो। मूर्ख लोग व्यर्थ को प्रकाश के लिये प्रार्थना और कामना करते रहते हैं। प्रकाश चाहने की भी क्या आवश्यकता है? प्रकाश के लिये अनुनय-विनय तुम्हें अन्धकार में रखती है। एक क्षण के लिये सब इच्छाओं को दूर फेंक दो। ॐ [ओ३म्] की रट लगाओ। न आसक्ति हो, न घृणा, पूर्ण समता हो, और तब तुम्हारा समग्र शरीर मूर्तिमान प्रकाश है। कार्य के सब सांसारिक उद्देश्यों को निर्वासित कर दो। इच्छारूपी प्रेतों को उतार दो, भगा दो। अपने सब काम को पवित्र बना दो। आसक्ति या लगन के रोग से अपने को छुड़ा लो। एक पदार्थ में आसक्ति आप को सर्व से पृथक कर देती है। स्वार्थमय पाशविक उद्देश्य ही आपके व्यवसाय और जीवन को लौकिक बना देते हैं। कार्य में अज्ञात रूप से जो वैराग्य निहित है उसका मजा चखने के लिये शरीर या क्षुद्र स्वयं से परे रहते हुए, क्यों कि कार्य तुम्हें ईश्वर के साथ रखता है, अपना काम करो।

निष्काम कर्म परमोच्च वैराग्य या उपासना का दूसरा नाम है। काम करने में तुम्हारा कोई उद्देश्य क्यों हो? मूर्ख अभागे विश्वास करते हैं कि उद्देश्य पूरे हो कर स्वयं काम की अपेक्षा अधिक सुख देते हैं। अंधे जानते ही नहीं कि स्वयं काम से बढ़ कर अधिक सुख किसी भी परिणाम में नहीं मिल सकता। आनन्द श्रम के वस्त्र पहने रहता है। आप अपनी सफलता सदा अपने साथ रख सकते हैं। इस तरह विशाल विश्व तुम्हारा पवित्र देवालय और तुम्हारा समग्र जीवन एक निरन्तर स्तोत्र हो जाता है। फल की तुम्हें क्या चिन्ता है? वेतन या तनख्वाह के लिये हैरानी तुम्हारे पास न फटके। यदि कोई उच्च पद तुम्हें नहीं मिलता तो दुष्ट अभिमान तुम्हें सड़कों पर झाड़ू देनेसे न रोके। तुम्हारे हाथ के सामने जो काम आपड़े उसे करने से न हिचको। परिपाटी के विरुद्ध कार्य से घृणा करना आत्म-सम्मान कदापि नहीं है। शरीर-सम्मान नेकी का प्रतिकूल ध्रुव है, नरक का बड़ा सीधा रास्ता है। जब आप किसी भी श्रम के लिये अपने हाथ बढ़ाने को तैयार हैं तो अति श्रेष्ठ पद और अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यवसाय आपका हार्दिक स्वागत करने के अपने हाथ फैलावेंगे। यही प्रकृति का नियम है। परिश्रम में निवास करनेवाले ईश्वर से यदि आप झिझकते और उलटते नहीं तो ईश्वर से अधिक शिष्टता कौन दिखा सकता है। आपकी इच्छा के विरुद्ध भी प्रकाश आपके द्वारा प्रकाशित होगा। मानवजाति की निन्दा या स्तुति की चिन्ता न करो। ये बातें केवल तुम्हे पथ-भ्रष्ट करतीं या धोखे में डालतीं हैं। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है। प्रसन्नता के एवंकथित बाहरी पदार्थों का सुख लूटने के लिये जब आप झुकते हैं तब आप चीज़ों में मेल करने वाले का अपवित्र, अशुद्ध

अभिनय करते हैं। बाहरी सुखों से कह दो, "शैतान, मेरे पीछे चला आ, मैं तेरे हाथों से कुछ नहीं लेने का"। सम्पूर्ण हर्ष का सोता क्या तुम नहीं हो ?

"ईर्षी ऋतुएं उसके लिये बेकार लोटती हैं, जो नित्य ग्रीष्म अपना आत्मा में वहन करता है।"

भारतीय कोयल या फाखता को देवदारु के वृक्ष पर बैठा दो स्वभावतः मधुर गीत वह गाने लगेगी। अपने चित्त को स्व-गृह में बैठने दो तो फिर स्वतः, स्वभावतः, अनायास मीठे से मीठे स्वर उससे निकलने लगेंगे। तुम्हारा ईश्वरत्व ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे पूरा होना है। आत्मानुभव ऐसी चीज नहीं है जो प्राप्त करनी हो, ईश्वर-दर्शन पाने के लिये तुम्हें कुछ करना नहीं है, अपने इर्द-गिर्द इच्छाओं का घटाटोप डाल रखने के रूप में तुमने अब तक जो काम कर रक्खा है उसका निराकरण मात्र करना है। मत डरो, तुम स्वाधीन हो। तुम्हारी प्रतीत होने वाली बन्धता पर तुम्हारी स्वाधीनता लदी हुई है। तुम्हारे आमंत्रण के बिना तुम्हें कोई हानि नहीं हो सकती। तुम्हें कोई तलवार नहीं काट सकती जब तक तुम न समझो कि वह काटती है। अपनी बेड़ियों और हथकड़ियों को अलङ्कारों के समान प्यार करने की क्या आवश्यकता है। निष्फल अनुरागों को झिटक कर दूर करो, समस्त कुटिलता को जला दो, फिर विश्व में ऐसी कौन सी शक्ति है जो तुम्हारे जूते खोलने का अधिकार पाकर अपने को धन्य न समझेगी ? अपने ईश्व-रत्व का निरूपण करो, क्षुद्र स्वयं को सोलहो आने भुलादो, मानों उसका कभी अस्तित्व ही नहीं था। छोटा सा बुल्ला फूटने पर समग्र समुद्र हो जाता है। तुम समग्र हो, अनन्त

हो, सर्व हो। अपनी मौलिक ज्योति से चमको। ऐ पूर्ण ब्रह्म, तेरे लिये न कोई कर्त्तव्य है, न काम, तुझे कुछ नहीं करना है, सम्पूर्ण प्रकृति तेरी चेरी है। तुम्हारी उपासना और पूजा करने का सौभाग्य पाकर संसार अपने ग्रहों को धन्यवाद देता है। प्राकृतिक शक्तियों का प्रणाम और दण्डवत, स्वीकार करने की आप कृपा करें।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आत्मकृपा ।

(भारतवर्ष में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ जी का व्याख्यान)

उपनिषद् (श्रुति) का वाक्य है कि "श्रेय और है, प्रेय और है"। फर्ज़ (कर्त्तव्य, धर्म) कुछ कहता है किन्तु गर्ज़ (स्वार्थ-कामना) और तर्फ खींचती है। श्रेय, फर्ज़ या ड्यूटी (duty) तो कहते हैं—"दे दो—त्याग"। लेकिन प्रेय या गर्ज़ तरग़ीब देती है—"लो लेलो, यह तुम्हारा हक्क है, अधिकार है, राइट है"। दुनियां में अपने राइट (हक्क) वा अधिकार पर ज़ोर देना तो साधारण और सुगम है, किन्तु अपने धर्म या फर्ज़ को पूरा करने में ज़ोर देना कठिन और नीरस मालूम देता है। वस्तुतः विचार करें तो फर्ज़ और गर्ज़ में वही सम्बन्ध है जो वृक्ष के बीज को उसके फल के साथ होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि फल तो सब लोग खाना चाहते हैं, किन्तु बीज को बोने और उसके पालन पोषण के परिश्रम से भागा चाहते हैं। बात तो यूं है कि जब हम लोग अपनी ड्यूटी (duty) पूरा करने पर ज़ोर देते चले जायँ, तो हमारे राइट [right] हमारे हक्क, हमारे अधिकार हमारे पास स्वयं आवेंगे। जब हम लोग केवल अपने अधिकार पर ज़ोर देंगे, अपने राइट, अपने अधिकार फड़कायंगे तो हम अभागी मुंह तकते ही रह जायंगे, हमारे हक्क भी झूठे हो जायंगे। प्रकृति का नियम ऐसा ही है।

ड्यूटी (duty) अर्थात् ऋण चार प्रकार के हैं। पहला

ऋण परमेश्वर के प्रति, दूसरा ऋण मानव जाति की ओर, तीसरा ऋण देश सेवा का और चौथा ऋण अपने आप की तर्फ। ये सब ऋण अन्त में एक ही ऋण में समा जायँगे। वह एक ऋण क्या है ? जो आपका ऋण अपने आपकी तर्फ है। जो लोग अपना ऋण (क़र्ज़) अपने आपको पूरी तरह से अदा कर देते हैं, उनके बाकी तीनों ऋण (कर्ज) अपने आप अदा हो जाते हैं।

कहा जाता है कि कृपा तीन प्रकार की है:—ईश्वर कृपा, गुरु कृपा, और आत्मकृपा । ईश्वर कृपा उस पर होती है जिसपर गुरुकृपा होती है, गुरुकृपा उस पर होती है जिसपर आत्मकृपा होती है। देखिये, एक लड़का जो स्कूल में पढ़ता है, अगर अपने स्वधर्म को, निजी कर्त्तव्य को अच्छी तरह से पूरा न करे, अर्थात् अगर वह आप आत्मकृपा न करे तो गुरुकृपा उस पर न होगी। और जब अपना पाठ अच्छी तरह से याद करे तो गुरुकृपा उसपर अपने आप होगी, और गुरुकृपा होने से ईश्वर कृपा हो ही जाती है।

देश की सेवा वह मनुष्य नहीं कर सकता, जिसने पहले अपनी सेवा नहीं की। जो अपना भी ऋण पूरा नहीं कर सका, वह देश सेवा क्या खाक़ करेगा ? जिस किसी ने कोई विद्या प्राप्त नहीं की, कोई कला (हुनर) नहीं सीखी, किसी बात में निपुणता प्राप्त नहीं की, किसी कारीगरी या कला कौशल्य में कुशलता प्राप्त नहीं की,और दम भरने लगे देश-प्रेमी होने का, तो भला बोलो उससे क्या बन पड़ेगा ? हां, इतना ज़रूर है कि जिसके दिल में सच्चाई भर जाय, वह अधूरा पुरुष भी कुछ न कुछ तो देश सेवा कर सकता है। देश की सेवा तो कोयला भी जलकर और लकड़ी भी कट

कर, नाव बनकर, कर सकते हैं। जब लकड़ी या कोयला भी कट या जल कर देश सेवा कर सकते हैं, तो वह मनुष्य भी जिसने कोई विद्या या कला नहीं पढ़ी, देश सेवा सच्चाई के ज़ोर से कुछ न कुछ क्यों नहीं कर सकता? मगर उसकी सेवा की केवल कोयला और लकड़ी की सेवा से समानता की जासकती है। इसके साथ सच्चाई भरा मनुष्य प्रवीणतारहित (अधूरा) कैसे कहला सकता है? सच्चाई तो स्वयं प्रवीणता (या निपुणता) है। वह व्यक्ति जिसने अपना ऋण अपने प्रति किसी प्रकार पूरा किया और अपने तईं आध्यात्मिक या बुद्धिमत्ता के बालकपन की हालत से आगे बढ़ा दिया तो समझना कि उसने कुछ नहीं तो एम. ए. या, शास्त्री आदि श्रेणी की योग्यता प्राप्त करली। यह व्यक्ति जिस हद (दर्जे) तक आध्यात्मिक या बुद्धिविषयक बल उत्पन्न कर चुका है, उसी प्रमाण से समाज की गाड़ी को उन्नति की सड़क पर आगे खींच सकता है। यदि ऐसा मनुष्य देश के सुधार का दम न भी भरे, और प्रकट रूप में देश की पूरी सेवा न भी करे, तो भी उसको देख कर और स्मरण करके बहुत से लोग बड़े उत्साह में आ जायंगे कि हम भी, एम. ए. पास करें, हम भी योग्यता पैदा करें। यह मनुष्य अपने आचरण से लोगों को उपदेश कर रहा है, और देश के बल को बढ़ा रहा है।

दामन आलूदा अगर खुद हमः हिकमत गोयद।
अज़ सखुन गुफ्तनं जेबायश बदाँ बिह न शवन्द॥
वाँकि पाकीज़ा दिलस्त अरबिनशीनेद खामोश,।
हमः अज़ सीरते साफीश; नसीहत शिनवन्द॥

भावार्थः—दुष्कर्मी अगर स्पष्ट बुद्धिमानी की बातें कहे

उसकी अच्छी २ बातें कहने से बुरे लोग अच्छे न होंगे। और जो पवित्र हृदयवाला अगर चुप भी बैठे सब लोग उसके उत्तम स्वभाव से उपदेश ले लेंगे।

सर आइज़क न्यूटन, जिसको खयाल भी न था कि मैं स्वदेश और जगत की सेवा करूंगा, इस प्रकार विद्या के पीछे दौड़ रहा था कि जिस प्रकार दीपक की ज्वाला (लाट) पर पतंगे। सर आइज़क न्यूटन अपनी तर्फ जो ऋण है, उसको निभाता हुआ, आत्मकृपा करता हुआ लोकोपकारक साबित हुआ। अगर एक व्यक्ति मैदान में खड़ा होकर दृष्टि फैलावे तो थोड़ी दूर तक देख सकता है और कुछ मनुष्यों को अपनी आवाज पहुँचा सकता है। किन्तु जब वह ऊँचे मीनार या पर्वत की चोटी पर पहुँच जाता है तो अपनी आवाज़ चारों ओर बहुत दूर तक पहुँचा सकता है। राम के साथ एक समय कुछ मनुष्य गंगोत्री के पहाड़ पर जा रहे थे रास्ता भूल गये। झाड़ियों और कांटो से बदन छिल गये साथियों में से अगर कोई पुकारता तो उसकी आवाज़ दूसरों तक नहीं पहुँच सकती थी, मुश्किल के साथ अन्त में चोटी पर पहुँच कर जब राम ने आवाज दी तब सब आगये। इसी तरह से जब तक हम स्वयं नीचे गिरे हुए हैं, दूर की आवाज सुनाई नहीं देगी। और जब चोटी पर चढ़ कर आवाज दें, तो सब के सब सुनेंगे। इस चौकी को जो रामके सामने हैं, यदि हिलाना चाहें और उसकी पहली तर्फ या बीच में हाथ डालें और ज़ोर मारें तो नहीं हिलेगी, लेकिन नजदीक से नजदीक स्थान से हाथ डाल कर हम सारी चौकी को खींच सकते हैं। दुनिया के साथ मनुष्य का सम्बन्ध भी ऐसा ही है।

बनी-ए-आदम अज़ायः यक दीगरन्द,
कि दर आफ़रीनशज़ि यक जौहरन्द।

भावार्थः—प्रजापति की सन्तान (मनुष्य) परस्पर एक दूसरे के अंग हैं, क्यों कि उत्पत्ति में मूल कारण एक ही है।

समस्त जगत को यदि तुम हिलाना चाहते हो तो दुनिया का वह भाग जो अति समीपस्थ है, अर्थात् अपना आप उसको हिलाओ। अगर अपने आप को हिला दोगे, तो सारी दुनिया हिल जायगी; न हिले तो हम जिम्मेदार। जिस कदर अपने आपको हिला सकते हो, उसी कदर दुनिया को हिला सकते हो। कुछ लोग सुधार (सांसारिक) के काम में हजारों यत्न करते हैं, रातदिन लगे रहते हैं तथापि कुछ नहीं हो सकता। और कुछ ऐसे हैं कि उनके जीते जी या मर जाने के पीछे उनकी यादगार में उनके नाम पर लोग स्वयं कालेज बनाते हैं, सभायें स्थापित करते हैं, और सैकड़ों सुधार जारी करते हैं, जैसे बुद्ध, शंकर, नानक, स्वामी दयानन्द। कारण क्या है? बस यही कि उक्त महात्मा अपने सुधारक आप बने।

यूनान में एक बड़ा गणितवेत्ता हो गया है जिसका नाम है आर्कमिडीज़। इसका कहना है कि "मैं थोड़ी सी ताक़त से समस्त ब्रह्माण्ड को हिला सकता हूं, यदि मुझे उसका मध्यविन्दु मिल जाय। किन्तु उस बेचारे को कोई स्थायी मुकाम (केन्द्र स्थान) न मिला। प्यारे! वह केन्द्र स्थान जिस पर खड़े होकर ब्रह्मांड को हिला सकते हो वह केन्द्र-स्थान आपका अपना ही आत्मा है वहाँ जम कर, अपने स्वरूप में स्थित होकर जो संचार [हलचल] और शक्ति उत्पन्न होगी वह समस्त ब्रह्मांड को हिला सकती है।

जब एक जगह की वायु सूर्य की गर्मी लेते २ पतली होकर ऊपर उड़ जाती है, तो उसकी जगह घेरने को स्वतः चारों ओर से वायु चल पड़ती है, और कई बार आँधी भी आजाती है। इसी तरह जो व्यक्ति स्वयं हिम्मत [ईश्वरीय प्रकाश] को लेता २ ऊपर बढ़ गया, वह स्वाभाविक ही देश में चारों ओर से मतों [सम्प्रदायों] को कई कदम आगे बढ़ाने का निमित्त कारण हो जाता है।

अब यह दिखलाया जायगा कि क्यों, कर अपना ऋण अपने आप की ओर निबाहते हुए हमारा ईश्वर की ओर का ऋण भी पूरा हो जाता है। मुसलमानों के यहां कथा है कि एक कोई सत्य का जिज्ञासु था। ईश्वर की जिज्ञासा में प्रेम का मारा चारों ओर दौड़ता था कि ईश्वर करे कोई ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मिल जाय कि जिसके दर्शन से हृदय की आग बुझ जाय और दिलको ठंढक पड़े। यूं ही तलाश करता हुआ हताश होकर जंगल में जा पड़ा कि अब न कुछ खायेंगे न पियेंगे—जान दे देंगे।

बैठे हैं तेरे दर पे तो कुछ करके उठेंगे,
या वस्ल ही हो जायगी या मरके उठेंगे।

अर्थात् तेरे द्वार पर आ बैठे हैं कुछ करके ही उठेंगे। एकता हो जायगी या प्राणत्याग करेंगे।

उस समय के पूर्ण ज्ञानी हजरत जुनैद थे और उस दिन हजरत जुनैद दजला में घोड़े को पानी पिलाने जा रहे थे। घोड़ा अड़ता था। दजला की तरफ नहीं जाता था। घोड़े को अड़ता हुआ और बिगड़ा हुआ सो देख कर जुनैद ने जाना कि इसमें भी कोई भलाई होगी। आखिर घोड़े के साथ जिद छोड़ दी और कहाः—" चल

जहां चलता है, चारों तर्फ मेरे ही खुदा का मुल्क तो है, सब मेरा ही देश है।" घोड़ा दौड़ता हुआ उस जंगल में, खास इसी स्थान पर आ पहुँचा जहां वह बेचारा सच्चा जिज्ञासु प्रेम का मतवाला, इश्क का जला हुआ, परमेश्वर का भूखा प्यासा पड़ा था। जुनैद घोड़े से उतर कर उस जिज्ञासु के पास आकर हाल पूँछने लगे और थोड़े ही सत्संग से वह परमात्मा का सच्चा जिज्ञासु मालामाल होगया। जब जुनैद जाने लगे तो उस प्यारे से कहा कि "अगर फिर कभी कब्ज — [आत्मिक अजीर्ण] हो जाय और तुझे ब्रह्मनिष्ठ गुरु की जरूरत हो तो बगदाद में आ जाना। मेरा नाम जुनैद है, कहीं से पूछ लेना" उस मस्त ने जवाब दिया, कि क्या अब मैं हुजूर के पास गया था? मुझे अब भेद मालूम होगया। अब मैं आने जाने का कहीं नहीं। अगर आयन्दा जरूरत होगी तो अब की तरह फिर भी चाहे हुजूर खुद, चाहे और कोई गरदन से पकड़ा हुआ घसीटता आवेगा।

असर है जज्बे—उल्फत में तो खिचकर आही जायँगे,
हमें परवाह नहीं हमसे अगर वह तन के बैठे हैं।

अर्थात् प्रेमाकर्षण में यदि कुछ प्रभाव है तो आप खिंच कर आ जायंगे। इस बात की परवाह नहीं कि आप तनकर दूर बैठे हैं। वाह रे आत्मसत्ता का रसायन!

बेहूदह चरा दरपये ओ मेगरदी,
विनशीं अगर ओ खुदास्त खुद मे आयद।
इश्के-अव्वल दर दिले-माशूक पैदा मेशवद,
ता न सोजद शमा कै पर्वानः शेदा मेशवद।
गिर्दे-खुद गर्दे गनीचन्द कुनी तौफे-हरम,
रहबरे नेस्त दरीं राह बिह अज़ किबला नुमा।

भावार्थ—उस (ईश्वर) के लिये तू व्यर्थ क्यों घूमता फिरता है? बैठ, अगर वह खुदा है, तो खुद आयेगा। प्रियां के हृदय में प्रथम प्रेम उत्पन्न होता है। जब तक दीपक न जले पतंग उस पर मोहित कब हो सकता है? ऐ गनी (कवि)! अपने गिर्द तू घूम, काबे की परिक्रमा तू कब तक करेगा? क्योंकि इस मार्ग में इस किबलानुमा (पूज्यात्मा) से और कोई अन्य पथदर्शक नहीं है। यह है आत्मकृपा का बल।

"यह हमारे भाग्य में नहीं था" "यह हमारी किस्मत में नहीं था," "ईश्वर की इच्छा," "आज कल्ह गुरु नहीं मिल सकता," "अच्छा सत्संग नहीं," "दुनिया बड़ी खराब है," इत्यादि ऐसे २ वचन हमारे अन्तःकरण की मलिनता और कायरता के कारण से हैं।

कैसे गिले रकीब के, क्या तअ़्ने-अक़रबा,
तेरा ही दिल न चाहे तो बातें हज़ार हैं।

अर्थात् विरोधियों की शिकायतें कैसी और संबंधियों के उलहाने क्या? जब अपना ही चित्त न चाहे तो हज़ार बहाने हो जाते हैं।

आपने बीसियों कथायें सुनी होंगी कि किस २ तरह से ध्रुव, प्रल्हाद, और अभिमन्यु इत्यादि छोटे २ बालकों ने परमेश्वर को बुलाया, प्रकट कर लिया। एक जरा सा लड़का नामदेव अपने नाना को ठाकुरपूजन करते हुए देखा करता था। उसके मन में आने लगा कि मैं भी पूजा करूँगा। चुपके २ "ठाकुरजी ठाकुरजी" जपा करता था। उसकी दृष्टि में शालिग्राम की प्रतिमा सच्चे ठाकुरजी थे। जब उसका दाँव लगता, शालिग्राम की मूर्ति के पास आकर

बड़ी श्रद्धा से स्नान करा के कहा करता था " ठाकुरजी ! भात ! " मगर उसे ठाकुरजी को स्नान कराने और पूजा करने की आज्ञा उसका नाना नहीं देता था। एक दिन उसके नाना को कहीं बाहर जाना था, और बिल्ली के भागों छीका टूटा। लड़के ने नाना से कहा " अब तो तुम जाते ही हो, तुम्हारे पीछे मैं ही ठाकुर पूजन करूँगा "। उसने कहा " अच्छा तू ही करना। लेकिन तू तो प्रातःकाल बिना हाथ मुँह धोये रोटी मांगता है, तेरे जैसा नादान पूजन क्या करेगा ? अगर पूजन किया चाहता है, तो पहले ठाकुरजी को खिलाना और फिर स्वयं खाना "। खैर, नानाजी तो इतना कह कर चले गये। रात को मारे प्रेम के बालक को नींद न आई। बच्चा उठ कर अपनी माता से कहता था " प्रातःकाल कब होगा ? ठाकुरजी का पूजन कब करूँगा ? " प्रातःकाल होते ही बच्चा गंगाजी पर स्नान के लिये गया और स्नान के बाद उसकी माता ने ठाकुरजी के सिंहासन को उतार कर नीचे रख दिया, और बच्चे ने मूर्ति को निकाल कर गंगाजल के लोटे में झट डुबो दिया। फिर सिंहासन पर बैठा कर माता से दूध मांगने लगा कि " जल्दी दूध ला, जल्दी दूध ला, ठाकुरजी स्नान कर बैठे हैं और उनको भूख लगी है। " उसकी माता दूध का कटोरा लाई। बालक ने ठाकुरजी के आगे दूध रख दिया, और कहने लगा " महाराज पीजिये, दूध पीजिये। " उस परमात्मा ने दूध नहीं पिया। लड़का आँखें बन्द करके धीरे २ ओंठ हिलाने लगा और मुँह से ' राम राम ' या ' ठाकुर ठाकुर ' का नाम बड़बड़ाने लगा इस विचार से कि मेरी इस भक्ति से प्रसन्न होकर तो ठाकुरजी जरूर दूध पीलेंगे। किन्तु बीच २ में आंखें खोल २ कर देखता

जाता था कि ठाकुरजी दूध पीने लगे या नहीं। बहुतेरा मंत्र पढ़ा, राम २ ठाकुर २ जी कहा, मगर दूध ठाकुरजी ने नहीं पिया। अन्त में थक कर बेचारा बालक नामदेव मारे भूख, प्यास, रात की थकावट, और निराशा के रोने लगा। हिचकियों का तार बंध गया। ओंठ सूख गये। हाय! अरे ठाकुर! आज तेरा दिल पत्थर का क्यों हो रहा है? क्यों नन्हे बच्चे की खातिर दूध नहीं पीता? ऐसे भोलेभाले बच्चे से भी कोई जिद्द करता है?

सीमीं बरी तो जानां लेकिन दिले तो संगस्त,
दरसीम संग पिनंहा दीदम् न दीद बूदम।

भावार्थः—ए प्यारे (माशूक़)! तू है तो चांदी के बदन वाला, लेकिन दिल तेरा पत्थर है। मैंने चांदी में पत्थर छिपा हुआ पहिले कभी न देखा था, पर अब देखा।

हाय! चांदी के बदन में पत्थर का दिल कहां से आ गया? बेचारा बच्चा रोता हुआ निढाल हो रहा है। आंखों से नदियां बह रही हैं। रोते २ मूर्छा आ गई। लोगों ने गुलाब छिड़का। जब होश आया, लोगों ने समझाना चाहा कि "बस! अब तुम पीलो, ठाकुर जी नहीं पीया करते, वह केवल वासना के भूखे हैं।" बच्चे में अभी यह अकल (बुद्धि) नहीं आई थी कि परमेश्वर को भी झुठलाले। ठाकुर जी को धोखा देना नहीं सिखा था। वह नहीं जानता था कि झूठ मूठ भोग लगाया जाता है। बच्चा तो सच्चा था। सदाकत [सच्चाई] का पुतला था। मचल कर चिल्लाया कि अगर ठाकुर जी दूध नहीं पीते तो खाने पीने या जीने की परवाह हम को भी नहीं।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः॥ मुण्डक उप०।

"यह आत्मा बलहीन पुरुष को कभी प्राप्त नहीं होता"। हाय ! नन्हे से नामदेव ! तुझ में किस कदर ज़ोर है ? कैसा आत्मबल है ? इस नन्हे से बच्चे ने यह ज़िद जो बांधी तो एक लम्बा सा छुरा निकाल लाया [हिन्दुस्तान में उन दिनों हथियार रखने का प्रतिबंध नहीं था।] और अपने गले पर रख कर बोला:—"ठाकुर जी पियो, ठाकुर जी दूध पियो, नहीं तो मैं नहीं"। छुरा चल रहा था, गला कटने को था इतने में क्या देखते हैं कि ठाकुर जी एकदम मूर्त्तिमान होकर [प्रत्यक्ष हो कर] दूध पीने लगे।

आप लोग कहेंगे कि यह गप्प है। राम कहता है कि आप लोगों का विश्वास कहां गया ? राम अमेरिका में रह कर कालिजों में, अस्पतालों में, अपनी आंखों से ऐसे दृश्य देख आया है कि विश्वास की प्रेरणा [बल] से इस चौकी को जो आपके सामने है, घोड़ा दिखा सकते हैं। आत्मतत्त्वविद्या के अनुभवी इस प्रकार के प्रयोग को स्पष्टतः सच्चे सिद्ध कर रहे हैं, तो क्या सच्चे निष्पाप पूरे भक्त बेचारे नामदेव के विश्वास का बल ठाकुर जी को मूर्त्तिमान नहीं कर सकता था ? परमेश्वर तो सर्वव्यापी है, परन्तु आत्मकृपा अर्थात् पूर्णविश्वास वह वस्तु है जिसके प्रभाव से परमेश्वर सातवें नहीं चौदहवें आकाश से, त्रिदिश से, हजारवें स्वर्ग से, वैकुण्ठ से, गोलोक से, इस से भी परे से अर्थात् जहां भी हो वहां से खिंच कर आ सकता है।

थामे हुए कलेजे को आओगे आपसे,
मानोगे जज़्बे-दिल में भला क्यों असर नहीं।
वह कौन सा उकदा है जो वा हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।

कीड़ा ज़रासा और वह पत्थर में घर करे,
इन्साँ वह क्या जो न दिले-दिलवर में घर करे।

ऐ मनुष्य, आपके अन्दर वह महान् धन और अनन्त शक्ति है कि उसका नियमित विकाश (आविर्भाव) ईश, देश, जगत् और परमात्मा तक को प्रसन्न करता है। ऐ नव-वसन्त के पुष्प ! तू अपनी ज़ात (स्वरूप) में प्रसन्न तो हो। इस निज का ऋण पूरा करने में तेरे बाकी सब ऋण पूरे हो जायंगे। पक्षी, मनुष्य और वायु तक सब खुश हो जायंगे।

तो खुशी तो खूबी आ काने-खुशी,
तो चिरा खुद मिन्नते—बादाकशी।

भावार्थः—तू स्वयं आनन्द है, तू सुन्दर-स्वरूप है, और तू आनन्द की कान है, फिर तू आसव [सुरा] का उपकार अपने ऊपर क्यों लादता है ?

अपना ऋण पूरा करने के साधन।

स्काटलैंड के एक अनाथालय में एक लड़का पलता था बहुधा बच्चों के नियमानुसार यह बच्चा खिलाड़ी और नटखट भी था। एक दिन वह उस अनाथालय से भाग निकला और रास्ते के ग्रामों में रोटियां मांग २ कर गुज़ारा करते हुए लन्दन आ पहुँचा। वहां के सब से अधिक संपत्तिवान् लार्ड मेयर के बाग में घूमने लगा [लार्ड मेयर बहुधा ऐसे धनवान् होते हैं जिनसे अमीर लोग, राजा लोग और बादशाह लोग भी ज़रूरत के समय कर्ज़ लिया करते हैं] यह गरीब बच्चा बाग में टहल रहा था। एक बिल्ली को उसने दौड़ते पाया। उसके साथ वह खेलने लगा और निरर्थक बातें करने लगा। उसकी पीठ पर हाथ फेरता था, पूंछ खींचता था, और लड़कपन के तरंग में बिल्ली से छेड़

मानी करता था। पड़ोस में गिर्जे का घड़ियाल बज रहा था। बच्चा बिल्ली से पूछता था, "यह पागल घड़ियाल क्या बकता है? कहो। [पागल इस लिये कि घड़ियाल बहुधा कोई चार बजा कर बन्द हो जाता है, कोई आठ, हद बारह बजा कर तो अकसर रुक जाते हैं; मगर गिर्जे का घड़ियाल बजता ही चला जाता है। पागल की तरह बन्द होता ही नजर नहीं आता] बिल्ली बेचारी तो घड़ियाल के आवाज़ को क्या समझती? लड़का बिल्ली की तर्फ से खुद ही जवाब देता था "टन, टन, टन, विटिंगटन, विटिंगटन," "[विटिंगटन उस लड़के का नाम था] घड़ियाल कहता है। "टन, टन, टन, विटिंगटन, विटिंगटन, लार्ड मेयर आफ लन्दन"। ज़रा खयाल कीजियेगा, अनाथालय से भाग कर आया हुआ तो छोटा सा बालक और अपने स्वप्न कहां तक ढूंढ रहा है! घड़ियाल की आवाज में भी अपने लार्ड मेयर होने के गीत सुन रहा है। वाह! "टन, टन, टन, विटिंगटन, विटिंगटन, लार्ड मेयर आफ लन्दन"।

इतने में लार्ड मेयर साहब अपने बाग में हवाखोरी करते वहां आ निकले। बालक से पूछा-"अरे तू कौन है? और क्या बकता है?" लड़का मस्ती और आनन्दभरा जवाब देता है:—"लार्ड मेयर आफ लन्दन, लार्ड मेयर आफ लन्दन" बच्चे पर गुस्सा तो क्या आता, उलटी लड़के की वह स्वतंत्र अवस्था लार्ड मेयर के हृदय में खप गई। और स्वाधीनता किस दिल को प्यारी नहीं लगती? लार्ड मेयर ने पूछा, "स्कूल में दाखल [प्रवेश] होना चाहता है? बच्चे ने जवाब दिया? "अगर शिक्षक मारा न करे तो"। वह लड़का स्कूल में दाखिल कराया गया। स्कूल में पढ़ते २ फिर क्रम से

कालिज की सब श्रेणियों को पास कर के सन्मानपूर्वक ग्रेज्यूएट होगया। इतने में लार्ड मेयर के मरने का दिन आगया। उसके कोई संतति न थी। लार्ड मेयर अपनी संपत्ति का बहुत सा भाग इस लड़के को दे मरा। यह बालक इस संपत्ति को बढ़ाते २ एक दिन खुद लार्ड मेयर आफ लन्दन हो ही गया। आप लार्ड मेयर की नामावली में इसका नाम पायेंगे। यह दुनियां और इसका आपके साथ बर्ताव, आपकी हिम्मत और मनोभाव का जवाब है। विट्टिंगटन का बच्चेपन में अपूर्व उत्साह था और उसके दिल के भाव सच्चे और ऊँचे थे। इसको वैसा ही फल क्यों नहीं मिलता? जैसी मति वैसी गति होती है—यान्मतिस्तांगतिर्भवेत्—जैसा दिल में भरोगे वैसा पाओगे। जैसा अपने विचारभूमि में बोवोगे, वैसा बाहर काटोगे।

चीन में एक विद्यार्थी बहुत ही गरीब था। रात को पढ़ने के लिये उसे तेल भी प्राप्त न होता था। जुगनू [खद्योत] को इकट्ठा करके एक पतले मलमल के कपड़े में बांधकर किताब के ऊपर रख लिया करता और उसकी चमक में पढ़ा करता था। किसी ने कहा कि इतना परिश्रम क्यों करता है "क्या चीन के वज़ीर हो जायगा? उसने उत्तर दिया कि "यदि विचारबल के विषय में प्रकृति के नियम सच्चे हैं तो एक दिन मैं अवश्य वज़ीर हो जाऊँगा"। चीन के इतिहास में देखिये कि एक वह दिन आया कि यही लड़का वज़ीर बन गया।

'तज़किरा आबेहयात' नाम के पुस्तक में प्रोफेसर आज़ाद ने एक आश्चर्यमय घटना लिखी है। एक दिन लखनऊ में एक शायर (कवि) नवाब साहब सब दीवान

और उनके साथियों को अपने शेरों (कविता) से प्रसन्न कर रहा था। महल में नवाब साहब विलम्ब से पहुँचे। बेगमों ने पूछा कि विलंब क्यों हुआ। नवाब साहब ने फरमाया कि अद्भुत चुटकुले और शेर व सखुन सुनते रहे। बेगमों ने कहा कि हमको भी सुनवाइयेगा। दूसरे दिन परदा किया गया, और शायर को बुलवाया गया। बेगमें बहुत ही प्रसन्न हुईं और आज्ञा दी कि महल में एक कमरा इसको रहने के लिये दिया जाय। शायर (कवि) भांप (ताड़) गया कि अगर मैं महल में रहूँगा तो इस विचार से कि मैं बेगमों को देख सकूँगा नवाब साहब को अच्छा नहीं लगेगा। नवाब साहब को सोच में देख कर शायर ने खुद शिकायत की कि " और तो मैं सब बातों में अच्छा हूँ, मगर केवल एकही बात की कसर है, मुझको बिलकुल दिखलाई नहीं देता। आँखों से बेकार हूँ। " शायर की यह शिकायत सफल हुई, बहाना ठीक उतरा, और नवाब साहब के दिल में जो खटका था वह दूर हो गया और दे दी कि महल में एक कमरा इसे रहने को दिया जाय। मगर [नापाक] [मलिन चित्त] शायर झूट मूठ यह धोखा दे रहा था कि मैं अन्धा हूँ। दिल में यह बुरी नियत भरी थी कि इस बहाने से बेखटके बेगमों और औरतों को पड़ा झांकूँ। परन्तु धोखा तो अन्त में अपने आपके सिवा और किसी को भी देना सम्भव नहीं और बुराई में सफलता तो मानो विषभरी मदिरा है।

एक दिन शायर शौच जाना चाहता था। दासी से पानी का लोटा मांगा उसने कहा " कमरे में लोटा नहीं है, कहां से लाऊँ?" [यह साधारण नियम है कि नोकर लोग ऐसे

महमानो से दिक्क आ जाते हैं।] शायर को जल्दी लगी थी; रहा न गया, सहज बोल उठा "देखती नहीं है? वह क्या लोटा पड़ा हुआ है।" सत्य भला कहां तक छिपे। यह सुनते ही दासी भागी और बेगम साहिबा के पास पहुँच कर कहा कि "यह मुआ तो देखता है, अन्धा नहीं है। अपने तईं झूठ मूठ अन्धा बताता है"। उसी दिन वह महल से निकाल दिया गया। परन्तु कहते हैं कि दूसरे ही दिन वह सचमुच अन्धा हो गया। कैसा उपदेशजनक दृष्टान्त है। जैसा तुम कहोगे और विचार करोगे वैसा ही होना पड़ेगा।

गर दर दिले तो गुल गज़रद गुलबाशी,
वर बुलबुले बेक़रार बुलबुल बाशी।

भावार्थ—अगर तेरे दिल में पुष्प [शुभ विचार] गुज़रेगा तो तू पुष्प (शुभ चित्त) होजायगा और यदि अशान्त चित्त बुलबुल, तो तू बुलबुल (अशान्त चित्त) हो जायगा।

सौदाये-बला रंज बला मी आरद,
अन्देशये-कुल पेशाकुनी कुलबाशी।

भावार्थः—बला का खफक़ान (विपत्ति का निरन्तर सोच) बला और रंज लाता है, और जब तू सब के हित का फिक्र करेगा तो तू सर्वमय होजायगा।

बाल्यावस्था में बहुधा देखा होगा कि कुछ बालक आँखें बन्द करके अन्धे होकर उलटे चला करते थे। उनकी मातायें यह देख कर उनको मारती थीं और रोका करती थीं कि अच्छी अच्छी मुरादें माँगो। अन्धों के स्वांग भरते हो, कहीं अन्धे ही न हो जाओ। सच कहा है:—

कृष्ण कृष्ण मैं करती थी तो मैं ही कृष्ण होगई। मीरां०

आपने देख लिया, अन्धा कहने से अन्धा, वज़ीर के ध्यान से वज़ीर लार्ड मेयर के खयाल से लार्ड मेयर बन जाते हैं। पस अपनी मदद आप करने के लिये, अपनी तर्फ अपना ऋण आप पूरा करने के लिये सब से आवश्यक बात आप लोगों के लिये है विचारों की पवित्रता, उत्साह की वृद्धि, शुभ संस्कार, निर्मल भाव और "मैं सब कुछ कर सकता हूं" ऐसा उच्च विचार, अविरत उद्योग और धैर्य।

गर चफ़्कँ मानिंदद सद्कोहे—मेहनत रोज़गार,
चीने पेशानी नबीनद गोशये—अब्रये-मां।

भावार्थः—यदि समय हमारे सिर पर परिश्रम के सैकड़ों पर्वत रख डाले, तो भी हमारी भौं (भ्रू) का कोना हमारे माथे के बल को नहीं देखेगा।

गरांच्र [1]कुत्ब जगह से टले तो टल जाये,
हिमालय [2]बाद की ठोकर से गो फिसल जाये,
गरचिः [3]बहर भी जुगनू की दुम से जल जाये,
और [4]आफताब भी [5]कबले उरुज ढल जाये,
कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे,
कभी न भूले से अपनी [6]जबीं पर बल आये।

उच्च शूरवीरता—उन्नत विचार का यह अर्थ न समझ लें कि अपने तईं तो तीसमारखां ठान लें और औरों को तुच्छ मानने लगे। कदापि नहीं। बल्कि अपने तईं नेक और बड़ा बनाने के लिये औरों की केवल नेकी और बड़ाई ही को दिल में स्थान देना उचित है। बुद्ध भगवान् कहा करते थेः— जैसा कोई खयाल करेगा, हो जायगा। उनके पास दो मनुष्य

(१) ध्रुव। (२) वायु। (३) समुद्र। (४) सूर्य। (५) उदय काल से पूर्व। (६) मस्तक (पेशानी)।

आये। एकने पूछा कि "महाराज. यह जो मेरा साथी है दूसरे जन्म में इसका क्या हाल होगा? यह तो कुत्ते के खयाल रखता है, कुत्ते से कर्म करता है, क्या अगले जन्म में कुत्ता न बनेगा?" दूसरा पहले के विषय में कहता है कि "यह मेरा साथी हर बात में बिल्ला है। क्या अगले जन्म में यह बिल्ला न होगा? "महात्मा बोले कि" भाई, जैसे संस्कार (खयाल) होंगे, वैसे ही तुमको फल मिलेंगे। लेकिन तुम लोग इस सिद्धान्त को गलती से लगा रहे हो। वह तुमको बिल्ला कह रहा है, तुम उसको कुत्ता। अब विचार करना वह मनुष्य जो अपने साथी को कुत्ता देखता है, उसका अपना दिल, कुत्ते की सूरत पकड़ रहा है। वह खुद ऐसे खयाल से कुत्ते के संस्कार धारण करता जाता है। पस जब ऐसा मनुष्य मरेगा तो उसके अन्तःकरण में कुत्ता समा रहा है; अतएव वह स्वयं कुत्ता बनेगा। और इसी तरह अपने पड़ोसी को बिल्ला समझने वाला खुद बिल्ला बनेगा। इस सिद्धान्त को विचार से देखना। वह दोष जो हम औरों में लगाते हैं, वह हम में जरूर प्रवेश होंगे। राम कहता है कि अपनी मदद आप करने के लिये आत्मकृपा इस बात की ऐच्छुक है, कि हम लोग औरों के छिद्र निकालना छोड़ दें और अपने सम्बन्ध में भी विचार के समय सिवाय नेकी और खूबी के और कुछ विचार न आने दें। जैसे गुम्बज़ से हमारी ही आवाज़ लौट कर आती हुई गूंज बन जाती है, वैसे इस गुम्बज़ नीलोफरी (आकाश-ब्रह्मांड) के नीचे हमारे ही संस्कार लौट कर असर करते हुए प्रारब्ध कहलाते हैं।

(१)बद न सोचे (२)ज़ेरे—गरदूँगर कोई मेरी सुने,

---

(१) बुराई (२) आकाश तले।

है यह गुम्बज़ की [1]सदा जैसी कहे वैसी सुने।

अपने विचारों को ठीक रक्खो। व्यर्थ आकाश को कुमार्गी (कुढँगा) और चर्ख़ (द्यौ) को टेढ़े चलनवाला कहना बच्चों की तरह गुम्बज़ को दोष लगाना है। अगर सब कुछ कहीं बाहर ही की प्रारब्ध से है तो शास्त्र विधि-निषेध के वाक्य को जगह न देता। जब शास्त्र यह जानता था कि तुम्हारे स्वाधीन कुछ नहीं है, सब कुछ प्रारब्ध ही है, तो शास्त्र ने क्यों कहा कि "यूं करो और यूं न करो" और तुम पर जवाब-दिही (उत्तरदायित्व) किस दलील से लगाई गई।

दरम्याने—कारे—दर्या तख़्त बन्दम करदई।
बाज़मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश॥

अर्थात् नदी के भारी वेग के बीच तूने मुझ को बन्द किया हुआ है, और तत्पश्चात् तू यह कहता है कि ख़बरदार अपना पल्ला मत भिगोना।

तुम्हारे अन्दर वह शक्ति है, कि जो चाहो कर सकते हो। और सच पूछते हो तो राम कहता है:—

मैं ने माना [2]दहर को [3]हक़ ने किया पैदा [4]वले,
मैं वह [5]ख़ालिक़ हूं मेरी [6]कुन से ख़ुदा पैदा हुआ।

* * * *

पौरुषा दृश्यते सिद्धिःपौरुषा द्धीमतां क्रमः।
दैवमाश्वासना मात्रं दुःख केवल बुद्धिषु॥

अर्थात्—पुरुषार्थ से सिद्धि होती है और बुद्धिमानों का व्यवहार पुरुषार्थ से ही चलता है। दैवयोग (प्रारब्ध) का शब्द तो बुद्धिमानों में दुःख के समय कोमल चित्त पुरुषों के

(१) आवाज। (२) संसार। (३) ईश्वर। (४) किन्तु। (५) प्रजापति। (६) कहने, आज्ञा।

केवल आंसू पोंछने के लिये हैं।

परमेश्वर उनकी सहायता करने को हाजिर खड़ा है जो अपनी सहायता आप करने को तैय्यार हों। यह कानूने कुदरती है। प्रकृति का यह अटल नियम है कि जब मनुष्य पूरा अधिकारी होगा तो जो उसका अधिकार है अपने आप उसको ढूढ लेगा। यहां आग जल रही है। प्राणवायु (oxygen) खिंच कर उसके पास आ जायगी। अंगरेजी में एक कहावत है कि "पहले तुम योग्य वा अधिकारी बनो। फिर इच्छा करो—First deserve and then desire" राम कहता है कि जब तुम योग्य वा अधिकारी होंगे तो इच्छा किये बिना ही मुराद आ मिलेगा।

बांधे हुए हाथों को बउम्मेदे-इजाबत,
रहते हैं खड़े सैकड़ो मजमूँ मेरे आगे।

"जो पत्थर दीवार में लगने के लायक है वह बाजार में कब रहने पायगा—The stone that is fit for the wall cannot be found in the way" जब आप पूरे अधिकारी होंगे तो आपके योग्य पदवी है और आप हैं, पदवी की तलाश में समय मत नाश करो। अपने तईं योग्य वा अधिकारी बनाने की फिक्र करो।

नाखुने—खार आके खुद उकदा तेरा कर देगा वा,
पहिले पाये—शौक में पैदा कोई छाला तो हो।

अर्थात्:—कांटे का नाखून अर्थात् नख अपने आप आकर तेरे हृदय की गांठ खोल देगा, पर पहले जिज्ञासा रूपी चरणों में कोई छाला तो हो।

जब सूर्य की ओर मुँह करके चलते हो तो साया पीछे भागता फिरता है, जब साया को पकड़ने दौड़ोगे तो साया

आगे हटता चला जायगा।

भागनी फिरती थी दुनियां जब तलब करते थे हम,
अब तो नफरत हमने की वह बेकरार आने को है।

* * * * *

गुजश्तम् अज़ सरे-मतलब तमाम शुद मतलब,
नकाब चिहरा-ए-मकसूद बुवद मतलब हा।

अर्थात् जब मैं इच्छाओं से परे गया तो इच्छायें स्वतः शान्त होगईं। बहुत सी इच्छाओं में वास्तविक स्वरूप का मुख ढका हुआ था, (या बहुत सी इच्छायें वास्तविक स्वरूप के मुख का पर्दा बनी हुई थी)।

भिखमंगों को हर कोई दूर २ करता है, तृप्तात्मा के पास स्वयं नमस्कार करने अर्थात् झुकने को आती हैं।

सौ बार गर्ज़ होवे तो धो पिये [1]कदम,
क्यों [2]चर्खो-मेहरो-माह पै मायल हुआ है तू।

जापान में तीन २ सौ चार २ सौ साल के पुराने चीड़ और देवदार के वृक्ष देखे, जो केवल एक २ बालिश्त (कर) के बराबर या कुछ अधिक ऊंचे थे। आप ख्याल करें कि देवदार के वृक्ष कितने बड़े होते हैं। मगर क्या कारण कि इन वृक्षों को सदियों तक बढ़ने से रोक देते हैं। पूछने पर लोगों ने कहा कि हम इन वृक्षों के पत्तों और शाखाओं को बिलकुल नहीं छेड़ते किन्तु जड़ काटते रहते हैं, नीचे बढ़ने नहीं देते। और यह नियम है कि जब जड़ नीचे नहीं जायगी तो वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा। ऊपर और नीचे (या अन्दर और बाहर) दोनों में इस प्रकार का संबंध है कि जो लोग ऊपर बढ़ना चाहते हैं दुनियां में फलना फुलना चाहते हैं,

(१) चरण (२) आकाश, सूर्य, और चन्द्र।

उन्हें नीचे अपने भीतर अन्तरात्मा में जड़ें बढ़ानी चाहिये। अन्दर अगर जड़ें न बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फलेगा।

नफ़स बनै चो फिरोशुद बलन्द मी गरदद,

अर्थात् बांसुरी में जितनी सांस नीचे उतरती है, उतना शब्द ऊंचे होता है।

मन्सूर से पूंछो किसी से [1]कूचाये-दिलवर की राह,
खुम साफ दिल में राह बतलाती [2]जुबाने-दार है।

*　　*　　*

सर हमचो तारे-सबह बसद दुर कशीदायम,
आखिर रसीदायम बखुद आरमीं दायम।

अर्थात् माला के डोरे के समान हमने अपने सिर को सौ दानों के अन्दर खींचा। अन्त में जब अपने तक पहुँचे तो वहीं ठहर गये।

आत्मकृपा (अपने आपकी तर्फ फर्ज) जो राम कहता रहा है उसके अर्थ किसी प्रकार की खुदी (अहंकार), खुद पसन्दी [अहंकार प्रियता], या खुदगर्जी [स्वार्थपरायणता] नहीं है। इसके अर्थ हैं आत्मोन्नति। और आत्मोन्नति या आत्मकृपा का मुख्य अंग है चित्तकी विशालता अर्थात् चित्त की शुद्धि का इस दर्जे तक उत्पन्न करना कि हमारी आत्मा देश भर की आत्मा का नक़्शा हो जाय, जगत् के दिखलाने वाले शीशे का काम देने लग पड़े। देश भर की जरूरतों को हम अपनी निजी जरूरत भान [अनुभव] करने लग पड़ें। और जब लोगों की दृष्टि में हम सारे भारत वर्ष या जगत् भर के भले का काम कर रहे हों, पर हमें वह काम केवल निज का काम मालूम दे पस अपने चित्त को ऐसा

(१) प्रियात्मा की गली का मार्ग। (२) सूली की नोक।

विशाल या उदार और बड़ा करते जाना कि यह चित्त सारी कौम का चित्त हो जाय, यह आत्मोन्नति है। जाती तरक्की का लक्ष्य है, सब के साथ ऐसी सहानुभूति कि

खूँ रंग-मजनू से निकला फस्द लैली की जो ली,

अर्थात् प्रियात्मा लैली की जब नाड़ी काटी गई तो प्यारे मजनू की नाड़ी से रुधिर निकल आया।

इश्क में तासीर है पर जज़्ब-कामल चाहिये।

प्रेम में ऐसा प्रभाव अवश्य है पर ऐसे प्रभाव के लिये पूर्ण प्रेम चाहिये।

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का,
शबनम का कतरा आंखों में उसकी नजर पड़ा।

अर्थात्—मृदु पवन से चोट तो पुष्प की पत्ति को लगी, परन्तु उस अभेदात्मा प्यारे के नेत्रों में आंसू दिखाई देने लग पड़े।

जो राम ने कहा है आत्मबल वह अन्य शब्दों में ईश्वर-बल ही है, आपका वास्तविक स्वरूप है, वह सबका स्वरूप है और वही वास्तव में ईश्वर का स्वरूप है।

मानूरे-खुदायेम दरीं खाना फितादा,
मा आवे-हयातेम दरीं जूये जानेम।

अर्थात्—हम ईश्वर का प्रकाश है, जो इस शरीररूपी घर में व्याप्त है। हम वह अमृत है जो इस देहरूपी नगर में बहता है।

यह नामरूप इस वास्तव स्वरूप की निर्मूल छाया के समान है। अपने तई नामरूप ठानकर जो काम किया जाता है, वह अहंकार और स्वार्थवृत्ति का उकसाया हुआ होता है और उसका परिणाम दुःख और धोखा होता है। परन्तु

जो काम निजानन्द और अभेदता में होता है, अर्थात् जो काम विश्वात्मा की दृष्टि से किया जाता है वह खुदी (अहंकार) से नहीं बल्कि खुदाई (ईश्वरभाव) से होता है और उसका फल सदा शान्ति और कार्यसिद्धि होगा। सारे व्याख्यान का तात्पर्य यह है कि खुदी [अहंकार] के स्थान पर खुदाई [ईश्वर भाव] की आंख से सब सम्बन्धों को देखो और नामरूप में लंगर डाल बैठने के स्थान पर निज स्वरूप में घर करो।

बहुत मजबूत घर है [1]आक़बत का [2]दारे-दुनिया से,
उठा लेना यहां से अपनी दौलत और वहां रखना।

जो पुरुष नामरूप के आधार पर कारोबार का सिलसिला चला रहा है, वह वायु की नींव पर क़िला बनाना चाहता है। जीता वही है जो सांसारिक उन्नति व वैभव, अपकीर्ति व अवनति आदि को जलबुद्बुद्वत् या मेघमंडल के छाया सदृश मानता है और इनका आश्रय नहीं करता।

सायः गर सायेः-कोहस्त खुर्क मी बाशद,

अर्थात्—छाया यदि पर्वत की छाया हो तो भी तुच्छ ही होती है।

आंखों वाला केवल वही है जिसकी दृष्टि बाह्य जगत को चीर कर पदार्थों की स्थिरता व अस्थिरता पर न जमकर, और लोगों की धमकी और प्रशंसा को काट कर एक तत्त्व पर जमी रहती है।

"नहीं है कुछ भी सिवाय अल्लाह के"। ब्रह्म ही सत्य है जगत मिथ्या है। सचेत केवल वही है जो हर समय उत्तम स्वरूप, सुन्दर स्वरूप अर्थात् वास्तव स्वरूप को

---

(१) परलोक वा निजघर (२) यह लोक, संसार।

देखता हुआ आश्चर्य की मूर्ति हो रहा है, वा आश्चर्यस्वरूप बन रहा है।

काश देखो, मुझे मुझे देखो।
हर सरे मूसे चश्मे-हैरत हो॥
खुश गया जिसके दिल में हुस्न मेरा।
दंग सकते का एक आलम था॥

अर्थात्—ईश्वर करे कि आप मुझे अवश्य देखें, और रोम २ से आप आंख भौचक्का (विस्मित) हों। जिसके चित्त में मेरी छवि समा गई उसके हां मूर्छावत् विस्मय दशा व्याप्त हो गई।

स्वप्न में किसी को धन मिला। इस धन के आधार से जो धनी बने वह मूर्ख है। इसी प्रकार इस स्वप्नरूप संसार की वस्तुओं के आधार पर जो जीता है, वह जीता ही मरगया। मुख्य धर्म [फर्जेउला] और आत्मकृपा की पूर्णता यही है कि

तू को इतना मिटा कि तू न रहे,
और तुझमें +दुई की बू न रहे।

यह परिच्छिन्न अहंकार तथा स्वार्थ इसका नाम तक मिट जाय, निशान तक न रहने पाय।

तो मबाश असला! कमाली नस्तोवस,
तु खुद हिजाबे-खुदी से दिल! अज़मियां बरखेज़।
न दारे आखरत नैदारे-दुनियां दरनजर दारम,
जि इश्क त कारचूँ मन्सूर वादार दिगर दारम।

अर्थात्-ऐ प्यारे, तुझ में तू न रहे यही पूर्णता है। ऐ दिल! तू अपना परदा आप है. बीच से उठजा। मेरी दृष्टि

+ द्वैत।

में न लोक है, न परलोक। मन्सूर के समान तेरे प्रेम से दूसरे की सूली से काम रखता हूँ।

अहंकार (परिच्छिन्न भावना) को स्थिर रखकर जो बड़े बनते हैं, फरऊन वा नमरूद हैं। परिच्छिन्नता को मिटानेवाला स्वयं ईश्वर, शिवोऽहम्, है।

रस्सी में किसी को सांप का भ्रम हो गया। अब अगर उसके लिये रस्सी है तो सांप नहीं और सांप है तो रस्सी नहीं। एक ही रहेगा। खुदी है तो खुदाई नहीं, खुदाई है तो खुदी नहीं।

तीरे-निगाह निशस्त मसकने खुद जां गुजाश्त,
ताकते मेहमां न दाश्त खाना न मेहमा गुजाश्त।
ता शाना सिफ़त सर न निही दर तहे-अर्रा,
हरगिज़ ब सरे-ज़ुल्फ़े-निगारे न रसी।

अर्थात्—प्यारे की दृष्टि का तीर बैठते ही जान (प्राण) ने अपना स्थान छोड़ दिया। अतिथिसत्कार की शक्ति न रखने के कारण अतिथि के लिये अपना घर छोड़ दिया। कंघी के समान जब तक तू अपने अहंकाररूपी सिर को ज्ञानरूपी आरा के नीचे नहीं रखेगा तब तक तू प्यारे के सिर के बालों को भी नहीं प्राप्त हो सकेगा।

जब तक कंघी की तरह सिर आरा के नीचे न रक्खोगे यार की जुल्फ़ तक नहीं पहुँच सकते।

ता सुर्मा सिफत सूदह न गर्दी तहे-संग,
हर्गिज ब सफा चश्मे-निगारे न रसी।

अर्थात्—जब तक सुर्मा की तरह पत्थर तले पीस न लोगे, असली यार की आंखों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि आंखें नहीं तो यार के कानों तक ही किसी तरह

पहुँच हो जाय तो भी जब तक स्वार्थपरायणता दूर न होगी, जबतक यह अहंकार मर न लेगा, जबतक खुदी गुम न होगी, यार के कानों तक नहीं पहुँच सकते। क्योंकि कान में रहता है, मोती. जरा उसकी दशा देख लो।

ताहम यो दुर-सुफता नगरदी बातार,
हरगिज बबेना गोशे-निगारे न रसी।

अर्थात्—जब तक मोती की तरह तार से न छिदोगे यार के कान तक भी कदापि नहीं पहुँच सकते।

ता खाके तुरा कूज़ा न साज़न्द कलालां,
हरगिज बलबे-लाले-निगारे न रसी।

* * *

पस अज़ मुर्दन बनाये जायंगे साग़र मेरी गिलके,
लबे-जानां के बोसे खूब लेंगे खाक में मिलके।

अर्थात्—कुँभार (ज्ञानवान्) जब तक तेरी अहंकार रूपी मिट्टी के आबखोरे न बना लेंगे तब तक प्यारे के लाल ओंठ तक तू पहुँच न सकेगा। मृत्यु के बाद मेरी मिट्टी के आबखोरे (प्याले) बनाये जायंगे, तब हम मिट्टी में मिल कर प्यारे के ओंठ खूब चूमेंगे।

इन कविताओं में आंख, कान, ओंठ, आदि से यह आशय नहीं है जैसे एक ही प्रियात्मा को प्रसन्न करने के लिये उसके कान को राग सुना सकते हैं, या उसकी आंख को सुन्दर रूप दिखा सकते हैं, या नाक को फूल सुंघा सकते हैं। कोई किसी उपाय से इस प्यारे को प्रसन्न कर सकता है, कोई किसी दूसरे उपाय से। लेकिन कोई उपाय ऐसा नहीं कि जिसमें बाह्य अहंकार की मृत्यु के बिना काम निकल सके। निःसन्देह कोई वैष्णव बन कर परमेश्वर को पूज सकता है

कोई शैव रह कर भक्ति कर सकता है। कोई मुसलमान की अवस्था में पूजा करे। कोई ईसाई की हालत में प्रार्थना करे, लेकिन वैष्णव, शैव, मुसलमान, ईसाई, कोई हो, सिद्धि अर्थात् तत्वदर्शन तभी होगा जब परिच्छिन्नता का मृत्यु (अन्त) हो जायगा। अगर कहो कि बाल आंख कान और ओंठ तक नहीं तो ईश्वर करें, प्यारे के हाथ तक ही तुम पहुंच लिये होते, तो

ता हमचो क़लम सर न निही दरतहे—कारद;
हरगिज़ ब सर—अंगुश्ते-निगारे न रसी।

अर्थात् जब तक लेखिनी के समान सिर चाकू के नीचे न रख लोगे कदापि प्यारे की उँगलियों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि हमें सब से नीचे रहना स्वीकार है। प्यारे के चरण तक ही पहुँच हो जाय तो,

ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे—संग,
हरगिज़ ब कफ़े-पाये-निगारे न—रसी।

अर्थात् जब तक मेंहदी के समान पत्थर के नीचे पिसे न जाओ, तबतक प्यारे के पाओं तक कदापि नहीं पहुँच सकते। अलगर्ज़।

ता ग़ुल जुदा ये चुरीदा न गरदी अज़शाख़,
हरगिज़ बगुले—हुस्ने—निगारे न रसी।

अर्थात्—जब तक फुल की तरह शाख के संबंधो से काटे न जाओगे यार तक किसी सूरत से पहुँच नहीं सकते।

बांसुरी से पूछा, "अरी बांसुरी, क्या बात है कि वह कृष्ण, वह प्यारा मुरली मनोहर, जिसके पलकों के इशारे से राजाधिराज कांपते हैं, भीष्म, अर्जुन, दुर्योधन समान नृपतिगण जिसके चरणों को छूने के भूखे प्यासे हैं, जिसकी चरण

रज अभी तक राजा महाराजा लोग जाकर मस्तक पर धारण करते हैं, और चन्द्रमुखी गौरांगना जिसके मधुर हास्य (मृदु मुस्कान) को देखने के लिये तरसते हैं, वह कृष्ण तुझको चाह और प्यार से खुद बारंबार चूमता है? एक ज़रासी बांस की लकड़ी, तूने ऐसे भगवान् कृष्ण पर क्या जादू डाला? तुझ में यह करामात कहां से आ गई? बांसुरी ने उत्तर दिया कि "मैं सिर से लेकर पाओं तक (अपनी परिच्छिन्नता, अहंकार को दूर करके) बीच से खाली हो गई। फल यह मिला कि वह कृष्ण स्वयं आकर मुझे चूमता है। जिसके चरणों में चूमने को लोग तरसते हैं वह शौक से मुझे चूमता है। मुझ से चित्ताकर्षक स्वर फिर क्यों न निकलें? मुझ में राम का दम (श्वास) है, मेरी सुरें उसकी सुरें हैं।

तही ज़ खेश चो नै शौक़ पाता सरे-खुद,
वगरना बोसे-लबे-लाले-नाई आसां नेस्त।

भावार्थः—बांसुरी के समान तुम सिर से पाओं तक अहंकार से खाली हो जाओ, नहीं तो बांसुरी बजानेवाले प्यारे के ओठों का चुम्बन मिलना सुगम नहीं है।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। उप०
धीर पुरुष इस संसार से मुँह मोड़ कर अमृत को पाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के शिष्य श्रीमान् आर. ऐस. नारायण स्वामी द्वारा व्याख्या की हुई

श्रीमद्भगवद्गीता ।

प्रथम भागः—अध्याय ६ पृष्ठ संख्या ८१६ ।

मूल्य मात्रः—

<u>साधारण संस्करणः</u>; सफेद कागज, कार्ड बोर्ड की जिल्द २)

डाक व्यय और वी. पी ।)

<u>विशेष संस्करण</u>; उत्तम चिकना कागज, कपड़े की जिल्द ३,

डाक व्यय और वी. पी. ।-)

<u>अभ्युदय</u> कहता है:—"हमने गीता की हिन्दी में अनेक व्याख्याएं देखी है परन्तु श्री नारायण स्वामी की व्याख्या के समान सुन्दर, सरल और विद्वत्तापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामी जी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की पुष्टि अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है। आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने जो कुछ उपदेश दिया है उसके उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें।"

<u>प्रेक्टिकल मेडिसिन</u> (दिल्ली) का मतः—'अन्तिम व्याख्या ने जिसको अति विद्वान् श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने गीतारहस्य नाम से प्रकाशित किया है, हमारे चित्त में बड़ा प्रभाव डाला था, परन्तु श्रीमान् आर० ऐस० नारायण स्वामी की गीता की व्याख्या ने इस स्थान को छीन लिया है। इस पुस्तक ने हमें और हमारे मित्रों को इतना मोहित कर लिया है कि हमने उसे अपने नित्य प्रातःस्मरण की पाठ पुस्तकों में सम्मिलित कर दिया।"

नोट—श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली के ग्राहकों को भी अब इस ग्रन्थ का डाकव्यय देना पड़ेगा।

लीग से मिलने वाली उर्दू पुस्तकों की सूची।

——:•:——

वेदानुवचनः—इसमें उपनिषदों के आधार पर वेदान्त के गहन विषय को ऐसी सरल और रोचक रीति से स्पष्ट किया है कि एक नौसिखुआ भी सहज में समझ सकता है:—

मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

कुल्लियाते—राम—या खुमखान-ए-रामः—(प्रथम भाग) इसमें तसवीर के साथ स्वामी राम के उर्दू लेखों का संग्रह है।

मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

रामपत्र या खतूते रामः—यह स्वामी राम के अमूल्य पत्रों का संग्रह है, जो उन्होंने अपनी तपोमय विद्यार्थी अवस्था में अपने गृहस्थाश्रम के गुरु भगत धन्नाराम जी को लिखे थे। इसमें राम की एक तसवीर भी है:—

मूल्य सादी ॥) सजिल्द ॥।)

रामवर्षाः दूसरा भागः—स्वामी नारायण की लिखी हुई विस्तृत जीवनी तथा रामप्रणीत वेदान्तविषयक कविताओं का यह संग्रह है। इसमें भी स्वामी जी का एक चित्र है।

मूल्य सादी ॥) सजिल्द ॥।)

सभ्यता और परिवर्तन के नियम—इसमें वर्तमान युग की सुधारणा की वेदान्त दृष्टि से आलोचना की गई है:—

मूल्य ।=)

डाक व्यय सबका अलग

स्वामी रामतीर्थ;

उनके सदुपदेश—भाग १, २, ३, ४, ५, ।

प्रत्येक भाग का मूल्यः—सादी ॥) सजिल्द ॥।)

डाक व्यय तथा वी. पी. अलग।

आज पर्यन्त पाँच भाग छप चुके हैं।

भाग पहलाः—विषयानुक्रम (१) आनन्द। (२) आत्म-विकास। (३) उपासना। (४) वार्तालाप।

भाग दूसराः—विषयानुक्रम (१) जीवनचरित। (२) सान्त में अनन्त। (३) आत्मसूर्य और माया। (४) ईश्वर-भक्ति। (५) व्यावहारिक वेदान्त। (६) पत्रमञ्जूषा। (७) माया।

भाग तीसराः—विषयानुक्रम (१) रामपरिचय। (२) वास्तविक आत्मा। (३) धर्म-तत्त्व। (४) ब्रह्मचर्य। (५) अकबर-दिल्ली। (६) भारत वर्ष की वर्त्तमान आवश्यकतायें। (७) हिमालय। (८) सुमेरु दर्शन। (९) भारतवर्ष की स्त्रियां। (१०) आर्य माता। (११) पत्र मञ्जूषा।

भाग चौथाः—विषयानुक्रम (१) भूमिका। (२) पापः आत्मा से उसका सम्बन्ध। (३) पाप के पूर्वलक्षण और निदान। (४) नक़द धर्म। (५) विश्वास या ईमान। (६) पत्र मञ्जूषा।

भाग पाँचवाः—विषयानुक्रमः—(१) रामपरिचय। (२) अवतरण। (३) सफलता की कुंजी। (४) सफलता का रहस्य। (५) आत्मकृपा।

☞ प्रत्येक भाग में १२८ पृष्ठ और स्वामी जी का चित्र है।

ब्रह्मचर्य।

भारत वर्ष में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ जी का यह व्याख्यान एक छोटी सी पुस्तिका के आकार में छपवाया है और इस अमूल्य और परमहितकारक उपदेश के अंक को जनता के कल्याण के लिये आध आना टिकिट भेजने पर बिना मूल्य ही सब की सेवा में भेजा जाता है। पाठशालाओं में, विद्यार्थियों के आश्रमों में और ऐसे ही योग्य अधिकारियों में वितरण करने के सदुपयोग के हेतु, जो कोई माँगे मँगावे उनकी सेवा में डाकव्यय के लिये पोस्टेज भेज देने पर आवश्यकतानुसार प्रतियां भेज दी जायंगी।

स्वामी रामतीर्थ जी के चित्र।

रामभक्तों की अनुकूलता के हेतु स्वामी जी के दर्शनीय चित्र, जो इन पुस्तकों में दिये जाते हैं, उनकी प्रतियां अलग बेचने का प्रबन्ध किया है।

प्रत्येक प्रति का मूल्य -)—दस प्रति का मूल्य ॥)

बटन फोटो।

स्वामी जी की परमहंस दशा के सुन्दर चित्र का रुपये की साइज़ का यह एक मनोहर गोलाकार बटन है, जिसको पहने हुए वस्त्र में लगा कर उनके दर्शनीय स्वरूप का प्रत्येक क्षण आनन्द ले सकते हैं। राम के भक्तों के लिये यह एक अनोखी वस्तु है। अब केवल थोड़े ही रह गये हैं। शीघ्र मंगा लीजिये।

मूल्य ॥) डाक व्यय अलग।

मैनेजर

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग,

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

The Complete Works of Swami Rama Tirtha.
In Woods of God-Realization.

Vol. I Part I-III. With two portraits, a preface by Mr. Puran, an introduction by Mr. C. E. Andrews, and twenty lectures delivered in Japan and America. Pages 500, D. OCTAVO, Cloth Bound Rs. 2.

Vol. II Part IV & V. Containing a Life-sketch, two portraits, seventeen lectures delivered in America, fourteen chapters of forest-talks and discourses held in the west, letters from the Himalayas, and several poems. Pages 572 D. OCTAVO. Cloth Bound Rs. 2.

Vol. III Part VI & VII. With two portraits, twenty chapters of lectures and informal-talks on Vedanta, ten chapters of his valuable utterances on India the Motherland and several letters. Pages 542 D. OCTAVO. Cloth Bound Rs. 2.

(Each Volume is Complete in itself.)

(Note.—Postage and Packing in all cases extra.)

Can be had from:—

(1) THE RAMA TIRTHA PUBLICATION LEAGUE, Aminabad Park, LUCKNOW.

---

(2) MESSRS. S. CHAND & BROS. Booksellers and Publishers. *Chandni Chowk, DELHI,*

(3) THE SECRETARY, SADHARAN DHARMA SABHA, *FYZABAD.*